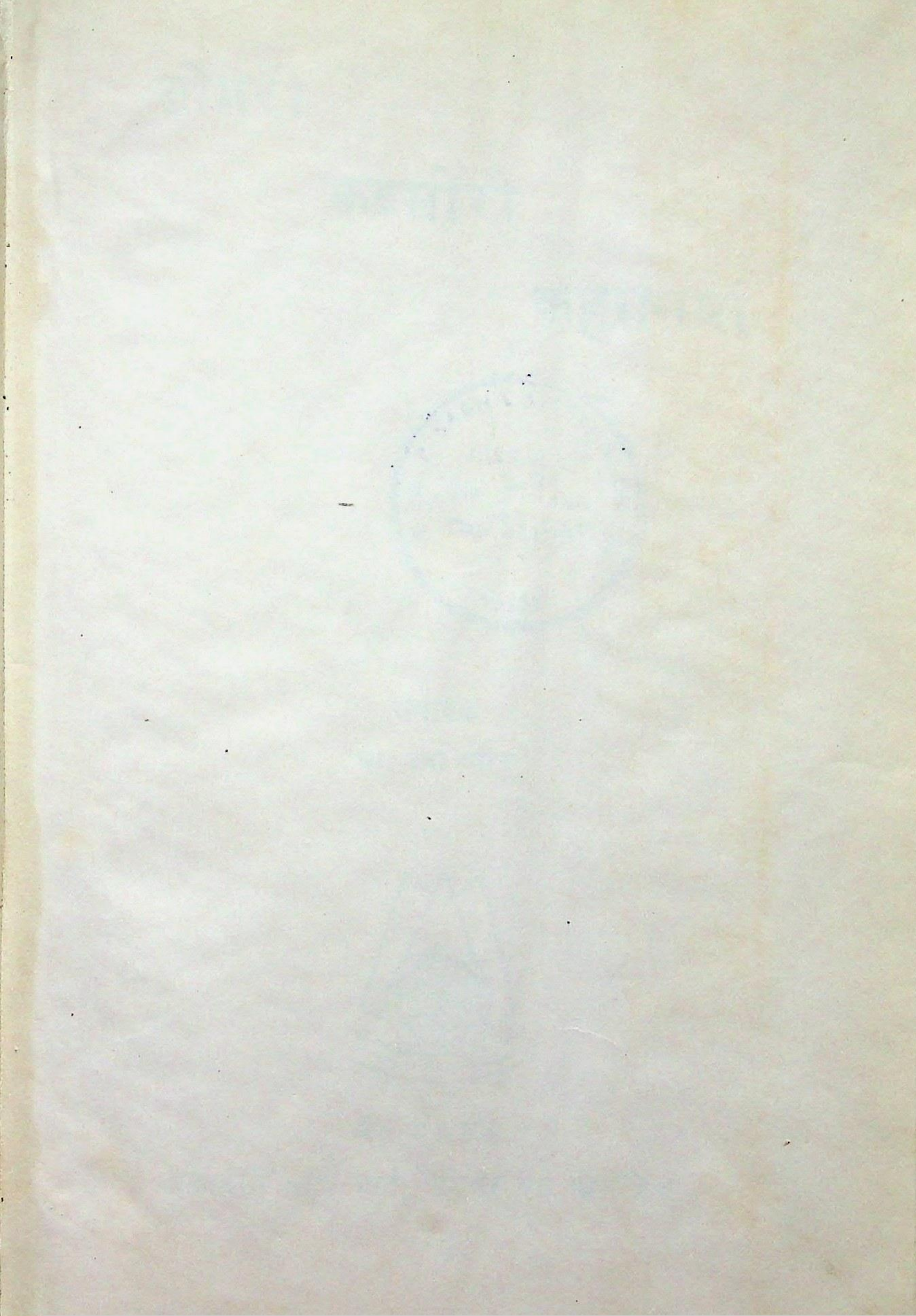
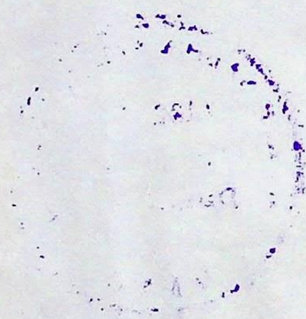
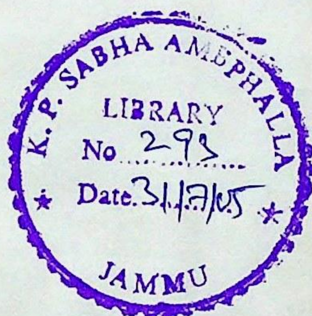
डोगरी-कश्मीरी कहानियां







डोगरी कश्मीरी कहानियां



संपादक

डा. उषा व्यास



जे० एंड के०
अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़
जम्मू





जे० एंड के० अकादमी आफ आर्ट
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज,
जम्मू द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1990 मूल्य : 25-50/- रुपये

रोहिणी प्रिंटर्ज, कोट किशन चन्द
जालन्धर शहर द्वारा मुद्रित

A Collection of DOGRI-KASHMIRI SHORT-STORIES edited by Dr. Usha Vyas.

आमुख—

धरती कोई हो, कथा उसके परिवेश का यथार्थ है। उसकी समस्याओं, विसंगतियों तथा आक्रोश का प्रतिफलन। मात्र एक घटना, विचार, अनुभूति ही कथा का सच नहीं है अपितु ज्यादा जरूरी है उसकी जीवतंता तथा कहानीपन, जो उसे चिरजीवी बनाने में समर्थ हो।

डोगरी हो या कश्मीरी दोनों भाषायें अपने आप में इतनी समृद्ध एवं सक्षम हैं कि मानवीय जीवन की हर घटना, भावना और विचार इनमें सहज अभिव्यक्ति पा लेता है।

डोगरी की प्रथम कहानी श्री भगवतप्रसाद साठे की 'पैहला-फुल्ल' हो या कश्मीरी की पहली कथा श्री सोमनाथ जुत्शी कृत 'यलि फोल गाश' स्वाधीनता से लेकर अब तक सीमांत प्रदेश की इस कहानी ने कई पड़ाव तय किये हैं। इस अंतराल ने निश्चय ही एक रोचक एवं प्राणवंत साहित्य दिया। ऐसी कहानियों का सृजन हुआ जिसने समूची भारतीय भाषाओं में उनको एक पहचान दी।

सांस्कृतिक नव चेतना से अनुप्राणित डोगरी-कश्मीरी कहानी ने अपने परिवेश के प्रति न केवल ईमानदारी निभायी बल्कि नित परिवर्तित हो रही परिस्थितियों, मान्यताओं एवं युगबोध को आत्मसात करते हुये अपनी समकालीनता को भी बराबर बनाये रखा। शिल्प और विचार के स्तर पर हुये सकारात्मक परिवर्तन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि यह कहानी उत्तरोत्तर नयी दिशाओं की ओर उन्मुख है।



जे० एंड के० अकादमी आफ आर्ट
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज,
जम्मू द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1990

मूल्य : 25-50/- रुपये

रोहिणी प्रिंटर्ज, कोट किशन चन्द
जालन्धर शहर द्वारा मुद्रित

A Collection of DOGRI-KASHMIRI SHORT-STORIES edited by Dr. Usha Vyas.

आमुख—

धरती कोई हो, कथा उसके परिवेश का यथार्थ है। उसकी समस्याओं, विसंगतियों तथा आक्रोश का प्रतिफलन। मात्र एक घटना, विचार, अनुभूति ही कथा का सच नहीं है अपितु ज्यादा जरूरी है उसकी जीवतंता तथा कहानीपन, जो उसे चिरजीवी बनाने में समर्थ हो।

डोगरी हो या कश्मीरी दोनों भाषायें अपने आप में इतनी समृद्ध एवं सक्षम हैं कि मानवीय जीवन की हर घटना, भावना और विचार इनमें सहज अभिव्यक्ति पा लेता है।

डोगरी की प्रथम कहानी श्री भगवत्प्रसाद साठे की 'पैहला-फुल्ल' हो या कश्मीरी की पहली कथा श्री सोमनाथ जुत्शी कृत 'यलि फोल गाश' स्वाधीनता से लेकर अब तक सीमांत प्रदेश की इस कहानी ने कई पड़ाव तय किये हैं। इस अंतराल ने निश्चय ही एक रोचक एवं प्राणवंत साहित्य दिया। ऐसी कहानियों का सृजन हुआ जिसने समूची भारतीय भाषाओं में उनको एक पहचान दी।

सांस्कृतिक नव चेतना से अनुप्राणित डोगरी-कश्मीरी कहानी ने अपने परिवेश के प्रति न केवल ईमानदारी निभायी बल्कि नित परिवर्तित हो रही परिस्थितियों, मान्यताओं एवं युगबोध को आत्मसात करते हुये अपनी समकालीनता को भी बराबर बनाये रखा। शिल्प और विचार के स्तर पर हुये सकारात्मक परिवर्तन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि यह कहानी उत्तरोत्तर नयी दिशाओं की ओर उन्मुख है।

प्रस्तुत रचनायें एक मौलिक सूझ तथा रचनागत वैशिष्ट्य के कारण अनागत के प्रति आश्वस्ति जगाती हैं, बेशक ! इनमें जीवन-वैविध्य की ऐसी बुनावट !! 'कुछ' है जो इन्हें 'आम' से 'अलग' करता है । प्रकृति की गोद में सोते-जागते, युद्ध की तीन-तीन विभीषिकाएं झेल चुके धुर-उत्तरांचल के इन कथाशिल्पियों ने अपनी कलम में मूर्त्त कर रखा है ; आम आदमी की एक इच्छा, एक आकांक्षा, एक अकुलाहट के साथ-साथ जिजीविषा तथा बदलाव के प्रति आस्था को । मुक्ति-बोध के शब्दों में—

> कोशिश करो, कोशिश करो,
> जीने की
> जमीन में गड़ कर भी



रचनाकारों के 'छोटे-बड़े' होने के प्रश्न तथा किसी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त इस संकलन में केवल सोलह रचनायें ही दी जा सकी हैं । कुछ अन्य अपेक्षित कथा-कृतियां हमें समय पर उपलब्ध नहीं हो पायीं । अतः हमारी सीमाओं में भले ही एक विवशता यह भी शामिल है किन्तु इस दिशा में हमारा यह प्रयास विराम नहीं लेगा ।

बहरहाल, हमारी आशा है कि ये कहानियां हिन्दी पाठकों को कहीं अपनी लगेंगी । रस देंगी ।

□ उषा व्यास

कथाक्रम

⊙

⊙

डोगरी कहानियां

हीरे का लौंग

☐ भगवत्प्रसाद साठे

मैली पैन्ट तथा मैली कमीज़ पहने हीरा गली में गर्दन झुकाये चलता जा रहा था। उस के पीछे एक मज़दूर था जिसने बिस्तर तथा एक छोटा-सा सूटकेस उठाया हुआ था। रूखे और बिखरे बाल तथा बालों में धूल ही धूल, लगता था उसका मन स्थिर नहीं था। गली की नुक्कड़ पर मुड़ते ही सरला उसके सामने आ खड़ी हुई।

यह क्या ? यह क्या हाल बना रखा है तुमने ? सामान ले कर कहां चले हो ?

हीरा गर्दन उठा कर सामने देखने लगा, सरला तिल्ला और किनारी लगा रेशमी सूट पहने खड़ी थी। उसकी मांग में सिन्दूर तथा नाक में बालू था। दो मास पूर्व सरला का विवाह हुआ था।

"हां, परदेस में रहते-रहते उकता गया हूं सोचा, देश चला जाऊं।"

परदेस कहते ही सरला को गाने के वे बोल याद आए जो विवाह से एक दिन पूर्व हीरा से मिलने गए हुए रिकार्ड बजने पर सुने थे। हीरे ने ज़ोर लगा कर कहा था—"तुम्हारे लिए नये रिकार्ड मंगवाये थे, मैंने सोचा मिलने के लिए आओगी तो बजा कर सुनाऊंगा।" बोल अवसरानुकूल थे। परदेसी, प्रीत क्या जाने ? सरला ने अनुरोध किया था कि उस रिकार्ड का नम्बर बता दो पर हीरे ने कहा था—"ये बोल ऐसे ही याद रखना, दूसरी बार रिकार्ड बजाने में मज़ा नहीं रहेगा।"

सरला पुनः बोली—"किन्तु तुमने यह क्या अवस्था बना रखी है।"

यही तो मनुष्य का असली रूप है, पहला तो बनाया हुआ रूप था।

रूप ! रूप का क्या कहना ? हीरा बड़ा आकर्षक आदमी था। रेशमी अचकन, धोती तथा पांव में साबर की चप्पल, सिर में सुगन्धित तेल की महक

बिखरती रहती थी। पास बैठा हुआ आदमी उस के मधुर वचन सुन कर प्रसन्न हो जाता था, मोहित हो जाता था।

बीती हुई बातों का कितना भी विस्तार हो जिस समय उनकी याद आती तो क्षण में सारी तस्वीर सामने आ जाती है। सरला को याद आया कि हीरे ने उस दिन मिलने को गए उसे एक लौंग दिया, तथा कहा था--"तूने अब विवाह में बालू पहनना है। बालू भारी होता है, कभी-कभी नाक के सुराख को चीरने लगता है तो नाक में पीड़ा होती है। नत्थ पहन कर तुम्हें नथोना तो है ही किन्तु यदि दर्द अधिक महसूस होने लगे तो बालू के स्थान पर लौंग पहन लेना। यह न तो नाक चीरता है न ही पीड़ा होती है। लौंग तुम्हें सुख देगा। याद रखना, यह हीरे का लौंग है।

किन्तु सरला की ससुराल में इस लौंग पर व्यंग्य कसे गए। एक ननद पूछने लगी—"अरी! यह लौंग असली हैं या नकली?" सरला ने कहा था, "यह हीरे का लौंग है, हीरा असली है।" ननद बड़ी परख करके देखने लगी तथा उसने अपनी दूसरी बहन को आवाज़ देकर बुला लिया—"देखना बहन, यह हीरे का लौंग है. मुझे तो फुखराज का लगता है।" "मर जानी फुखराज नहीं पुखराज, बता कहां है? बड़ी ननद को परख की जानकारी थी। उसने बड़े ध्यान से देखा और बोली, "राख! पुखराज है। इम्मीटेशन है इम्मीटेशन! आज कल चल पड़े हैं बड़े-बड़े चमकदार नकली नग! यह भी नहीं है।" सरला पास खड़ी मन ही मन घुटती जा रही थी। हीरे का लौंग नकली होगा भला?

सरला पूछने लगी भला वताइए, "तुमने जो लौंग दिया था वह असली था या नकली?"

सरला मैंने भला तुम्हें नकली लौंग देना था क्या? असली लौंग लेते मेरा असली रूप निकल आया है। ध्यान से देख! हीरा असली है या नकली?"

सरला के शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। लौंग का हीरा असली है तथा हीरा स्वयं? हीरे का मुंह सफेद पर्दा बन गया तथा उस पर्दे पर बीती हुई सारी बातें सामने आने लगीं। सरला प्रथम बार हीरे से भाभी के घर मिली थी। फिर रोज़ मिलती रहती थी। पहले दिन ही भाभी ने हीरा को बताया था इस लड़की की जिस लड़के के साथ विवाह करने की इच्छा है, वह लड़का भी इससे विवाह करने को तैयार है। किन्तु इन दोनों के माँ-बाप में सौदा तय नहीं हो रहा। इसका बाप सगाई पर पाँच सौ रुपये दे सकता है किन्तु लड़के का पिता पांच हजार पर मानता है। बात आधे पर अटक गई है, कोई समाधान नहीं निकल रहा है।

उस समय हीरा के मन में आया कि उसने अपने विवाह पर कुछ भी

नहीं मांगा था फिर भी उसे दहेज के नाम पर कपड़ों के कुछ चिथड़े मिले थे । न मांगो तो कोई देता भी नहीं है । वे चिथड़े घर में किसी काम नहीं आए । श्याम का विवाह हुआ था तब उसके बाप ने भी कुछ नहीं मांगा था । वधु ने उसके घर में कलह मचा दी थी । श्याम को अलग करवा कर ही उसने सांस ली थी । चूल्हा चौका अलग अतः बाप को कौन पूछता । उसके खर्च के लिए एक रुपया भी नहीं बचता था । लड़कों की पढ़ाई पर किया गया खर्च किसी काम न आया सगाई पर यदि कुछ मांग लिया जाए, तब बहू लड़के को लेकर चाहे अलग हो जाए, मां-बाप खर्च करने में परेशान तो नहीं न रहते ।

यदि लड़कियां दहेज कम लेकर जाएं तब सास और ननदें व्यंग्य वाणों से मन को आघात पहुंचाती हैं । अतः यदि यह बात सब करें तो अच्छा है कि लड़के के मां-बाप मुंह खोल कर पहले ही मांग लें ।

भरी दोपहर में गर्मियों के दिनों में धूप आग बरसाती थी तब भी हीरा भाभी के घर रोज जाता था । उनके घर बड़ तथा नीम के वृक्ष की छाया पड़ती थी । अतः उनके कमरे ठंडे रहते थे । वहीं बैठ कर सभी नए-नए रिकार्ड सुनते थे । दोपहर भी कट जाती थी तथा मन भी लगा रहता था । सरला हीरे की ओर टकटकी लगा कर देखती रहती थी । उसे पता नहीं था कि उसकी भावनाएं कौन सा रंग पकड़ रही हैं । मन कहीं, इच्छा कहीं, तथा यहां क्या ? किन्तु वह आकर्षित अवश्य होती थी, ललचा भी जाती थी, लज्जित भी होती थी । आलस्य भी दिखाती थी । एक नया रंग था । एक नई भावना थी । वह भावना मैली थी या पवित्र ? हीरा सोचता था सरला का विवाह उसके मन पसंद लड़के के साथ कैसे हो, वह सुखी कैसे हो ? एक दिन उसके मुंह से निकल गया था । भाभी सरला कैसी सरल तथा सुन्दर लड़की है । मेरा मन कहता है कि मैं इसे घर ले जाऊं, जब तक विवाह न हो अपने पास ही रखूं ।

सरला झटपट बोल पड़ी थी, कहने को तो कह दिया किन्तु करेगा कौन ?

ऊपरी मन से तो बात आई गई थी । सरला स्वयं भी हंस उठी थी तथा भाभी भी हंस उठी थी । "अच्छा उत्तर दिया सरला ने ।" हीरा भी हंस उठा था जैसे बात मन ही न लगाई हो किन्तु बात चुभ गई थी । पूरे मुहल्ले में एक ही बात सुनाई दे रही थी—हीरा बहुत ही अच्छा आदमी है । दूसरे की अन्तर्पीड़ा को समझता है, दूसरे के दुःख में सम्मिलित होता है—किन्तु यह बात कहां से चली—चाहे परदेसी है पर सब के साथ हिलमिल कर रहता है तथा लगता है कि सौ वर्ष से यहीं रह रहा है ।

इस बात की चुभन इतनी गहरी थी कि सरला की झिझक समाप्त हो गई । हीरा पैसे वाला आदमी था । उसकी पत्नी मायके चली गई थी । सरला हीरे के घर आने-जाने लगी । पहले दिन उसने पुस्तकें देखीं थीं । दूसरे दिन

उसने घर की एक-एक वस्तु देखी। तीसरे दिन नौकर से पूछ कर आटा और चावल के बर्तन तलाश किये थे। चौथे दिन अपने हाथ से रोटी पका कर उसने हीरा को खिलाई थी तथा फिर.........।

फिर बस। सरला के मां-बाप और लड़के के मां-बाप एक दूसरे की बातें मान गए थे तथा सरला का तिलक चढ़ गया था।

मुहल्ले में सभी लोग बातें करने लगे थे कि सरला का बाप जितनी रकम दे रहा था उसने उतनी ही दी तथा लड़के का बाप जितनी रकम मांगता था उसे उतनी ही मिली। हीरा ने सरला को सुखी देखने के लिए अपनी कमाई का पुल बनाया था। बारात आई तो वह हीरा के घर ही ठहरी। बारातियों ने बाजा तथा रिकार्ड हीरा से मांग कर लिए थे। जब वापस लौटाए गये तो वे टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। उन्होंने उन की कीमत देना चाही थी तब हीरा ने कहला भेजा था—सरला के बारातियों से भला मैं रिकार्डों की कीमत लूंगा? लड़के का बाप बोला, "हीरा सरला को अपनी बेटी समझता रहा है।"

सरला ने देखा हीरा के मुंह से सफेद पर्दा उठ गया था। उसके मुंह पर मैल की पिलछी जमी थी तथा होंठ फर-फर करके कांपते हुए लग रहे थे।

वह बोली—आपने मुझे सुखी देखने के लिए स्वयं को दुखी क्यों बनाया, अब भला मुझे सुख कहां मिल सकता है?"

सरला, दूसरे को सुख देने के लिए अपना सुख छोड़ना पड़ता है। इतना करना कि हीरे का लौंग सम्भाल कर रखना। लौंग पर सुहाग का प्रकाश पड़ता रहे तो चमक दूर तक जाती है। मुझे विश्वास है कि तेरे लौंग की चमक मेरी आतमा को सदा प्रकाश प्रदान करेगी। □

अनु० शिव 'निर्मोही'

कास्तू का काला तीतर

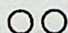
☐ नरेन्द्र खजूरिया[1]

कास्तू एक-एक उपला उलटती-पुलटती जा रही थी।

"कुर...कुर...कुर" यह आवाज़ सुन कर कोडू तीतर अपनी चोंच उठा कर ऊपर देखता और अपनी गर्दन हिलाने लगता। उसके गले में पड़ा हुआ छोटा-सा घुंघरू बज उठता और कोडू कास्तू की ओर भागता।

घुंघरू की मद्धिम-सी आवाज़ सुन कर कास्तू को अपने सामने दो नन्हें-नन्हें हाथ दिखाई देने लगते, जिनमें कभी चांदी का एक-एक कंगन पड़ा हुआ था। कोडू के गले में, उन्हीं कंगनों की एक घुंघरी धागे से बंधी हुई थी।

कास्तू की दुनिया गोल नहीं लंबी हैं, जिस पर मोड़ ही मोड़ दिखाई देते हैं। इसके हर मोड़ पर कास्तू ने एक नया जीवन देखा है, एक नया जीवन जिया है।



गहरी घाटी पार कर के जब कास्तू छोटे ताल वाली 'रिज' पर पहुंची तो सामने उसे बांसों पर लहराती, रंग-बिरंगी झंडियां दिखाई देने लगीं। वह उसी ओर चल पड़ी और जब वह जगतू बरवाले के 'थान'[2] पर पहुंची, तो वे झंडियां उसे स्याह-सी दिखाई दीं।

थान के अंदर जगतू बरवाला देवता के सामने धूप जला रहा था। गूगल धूप की खुशबू थान के अंदर और बाहर चबूतरे तक फैली हुई थी। धूप वाली क़लछी हाथ में लिये बरवाला बाहर आया।

"जय-जय सुरगल देवता! तेरी साम, जय-जय..."

"यह कौन डोली[3] है?"

---

1. एक हरिजन जाति 2. शरण 3. सवाली।

''बरवाला जी, मैं एक मुसाफिर हूँ ।''

बरवाला धूपवाली कलछी चारों ओर घुमाने लगा...''चमें दिशा में हमरी रखिया करो...सुरगल महाराज...।''

शंख फूंकने के बाद बरवाला चिलम ले कर, एक सतून के सहारे बरामदे के कोट पर बैठ गया । 'पक-पक-पक' ।

पहले हल्के-हल्के कश लेने के बाद उसने ज़ोर से दम खींचा । चिलम पर एक लपट नाच उठी । लपट की रोशनी में उसे कास्तू की एक झलक दिखाई दी ।

''कौन जात है तेरी ?''

''महाशी[1] ।''

''इस फले (बस्ती) में क्या किसी से रिश्ता-नाता है ?''

''बरवाला जी, सिर के साईं के चले जाने के बाद, अब सब रिश्ते-नाते टूट गये हैं । मेरे महाशे को फांसी लगे एक साल बीत चुका है ।''

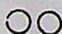
''वह क्यों ?''

''उसका स्वभाव ज़रा तेज़ था । उसने अपने दो शरीकों की एक-साथ हत्या कर डाली थी ।'' एक आह भरते हुए कास्तू ने कहा, ''माथा फूटे इस तकदीर का...उसने मेरी फलती-फूलती गृहस्थी उजाड़ दी...मैंने डेढ़-डेढ़ मन परोला (सफेद पहाड़ी मिट्टी) सिर पर ढो-ढो कर कस्बे में बेची । बड़े-बड़े नामी वकील किये । बड़ी से बड़ी अदालत में अपील की, लेकिन मेरे महाशे के भाग्य में जैसे फांसी लगना ही लिखा था ।''

''अच्छा ! तो तू फामी महाशे की औरत है ! एक दिन वह भी इसी थान पर एक सवाली बन कर आया था...औलाद के लिए...लेकिन तू अब...?''

''सुनो बरवाला जी, परदेस में जा कर भीख मांगने में भी कोई लज्जा की बात नहीं ..लेकिन अपने शरीकों में...और फिर शरीक भी वे, जिन्होंने हमारे खिलाफ बढ़-चढ़ कर गवाहियां दीं मेरे महाशे के फांसी चढ़ने पर जिन्होंने खुशियां मनायीं मैं अब वहां उनमें रह कर कैसे दिन काट सकती हूँ ?''

''घबराओ नहीं महाशी, तेरे भाग्य का सितारा अभी डूबा नहीं है । सुरगल देवता ने तुझे अपनी शरण में बुला लिया है ।''

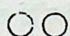


1. एक हरिजन जाति

कास्तू ने एक और उपला पलट कर देखा, नीचे दीमक कुलबुलाने लगी। कुर...कुर ..कुर...।

कोडू तीतर टिक-टिक करता हुआ, चुन-चुन कर दीमक खाने लगा।

छोटी-छोटी पाथियां[1], बड़े-बड़े ढौकले[2], उनमें से कुछ खुश्क हो कर भुरभुरा चुके हैं और कुछ, बाहर से खुश्क, लेकिन अंदर से अभी गीले हैं। उनके अंदर कीड़ों, मकोड़ों की कुलबुलाहट से कास्तू के बदन में ऐंठन सी होने लगती है, और उसकी ज़बान बेज़ायका, फीकी सी हो जाती है।



उस रात को जब जगतू को जातर[3] पड़ी, तो कास्तू ने भी दुर्गा काली का रूप धारण कर लिया। एक हाथ से उसने जगतू की बांह् मरोड़ ली और दूसरे हाथ से उसकी लम्बीं लटें नोचती हुई पूछ रही थी, "अरे बरवाले! तेरी इन काली लटों से भी ज्यादा काली है तेरी आत्मा। क्या समझ कर तूने मुझ पर हाथ डाला रे? मेरे महाशे ने एक-साथ दो खून किये थे, एक खून करने की ताक़त तो मेरे अंदर भी है। बोल, पापी पाखंडी...?"

जगतू ने कास्तू को मां कह कर पुकारा; और उस घड़ी उसकी मिन्नत-खुशामद कर के उससे अपनी जान बख्शवायी थी।

कास्तू उसी रात को वहां से चली गयी। बरवाले को उसने उस समय चाहे क्षमा कर दिया था, लेकिन गुस्से से उसका शरीर अब भी कांप रहा था।

कहीं कोई अलगोज़ों पर 'चन्न' (एक लोक प्रिय पहाड़ी गीत) की धुन बजा रहा था। सावन महीने की स्याह काली रात थी। कास्तु को देख कर बस्ती के कुत्ते भौंकने लगे।

"अंधेरे में किसे देख कर ये कुत्ते भौंक रहे हैं?" चौकीदार की आवाज़ सुनाई दी!

"जी, मैं हूं। बस्ती के यह कुत्ते मेरे पीछे पड़ गये हैं।"

"तू कौन है?"

"जी, मैं परदेसन हूं।"

शौंकू चौकीदार ने उसके पास आ कर दियासलाई जलायी। "बस्ती में किसके यहां जाना है तुझे?"

---

1. गोबर के छोटे पतले उपले 2. बड़े आकार के उपले 3. देवता की छाया। (प्रस्तुत प्रसंग में छाया का पाखंड)

"जिसके यहां ठिकाना मिल सके। जहां मेहनत-मज़दूरी कर के रोटी का टुकड़ा मिल सके।"

शौंकू ने जेब से एक सिगरेट निकाल कर सुलगायी और फिर दिया-सलाई जला कर कास्तू की ओर देखा।

"क्या जात है तेरी?"

"महाशी...लेकिन यहां अलगोज़े कौन बजा रहा था?"

"क्यों?"

"कुछ नहीं। मुझे सांत्वना हुई कि चलो, इतनी रात गए कोई तो जाग रहा है..."

शौंकू ने सिगरेट का लंबा कश खींचा। कास्तू को शौंकू के गले में पड़ी हुई अलगोज़ों की जोड़ी दिखाई दे गई।

वह सोचने लगी—मेरा महाशा भी इसी तरह अलगोज़े वजाया करता था। और कास्तू को एक ठिकाना मिल गया। वह चौकीदार शौंकू के घर चली आई। चौकीदार के घर पर सिर्फ उसकी बूढ़ी मां थी। कास्तू ने अपने काम-काज से मां-बेटे दोनों को मोह लिया।

बस्ती में खुसर-फुसर होने लगी——

"शौंकू चौकीदार कोई पहाड़ी रखेली ले आया है।"

उधर जगतू बरवाले को फिर देवता छाया पड़ी। उसने ख़तरे की पूर्व-सूचना दी "वस्ती पर भारी मुसीबत आने वाली है। गौड़-बंगाले की एक जादूगरनी ने बस्ती पर, अपना खूनी पंजा जमा लिया है...।"

जितने मुंह उतनी बातें। कोई कहता, "वह सिद्ध किए हुए मसान से अपने सभी तरह के काम करवाती है।"

"मसान रातो-रात शौंकू के खेतों में नलाई-गुड़ाई कर देता है।"

"वह एक ही गट्ठे में इतनी घास उठा लाती है, जिसको घर के पशु तीन दिन तक खा कर भी खत्म नहीं कर सकते..."

ये बातें सुन कर शौंकू की मां अपने बेटे को कहती, "बेटा, लोग सच ही कह रहे हैं। बरवाला कभी झूठ नहीं बोलता। लगता है, यह औरत कोई छलावा है! भाड़ में जाए उसका काम। बेटा, तुम उसे घर से निकाल दो।"

शौंकू यह सब सुन कर मुस्करा देता और गांव से बाहर जाकर अकेले में अलगोज़े वजाने लगता।

शौंकू की मां बाबा सुरगल के 'थान' पर जाती और अपने सिर पर दोहत्थड़ मार कर कहती, "बरवाला जी, मेरे बेटे को बचा लो। उस डायन ने उसे जैसे अपनी भेड़ बना लिया है।"

जगतू धरती पर दोहत्थड़ मार कर कहता, "कोई भारी मुसीबत आने वाली है। देवता नाराज़ हो गया है। हर रात को आकर वह मुझे झंझोड़ता है। पर मैं यहां किसे जगाऊं? सारी की सारी बस्ती सो रही है। ये लोग जागेंगे ज़रूर, लेकिन उस समय तक यह गौड़-बंगाले की जादूगरनी सबको निगल जायेगी।"

कास्तू उपले उलटती-पुलटती चली जा रही थी...कुर...कुर...कुर।

यादों की बर्फानी परतें आज फिर पिघल रही हैं और गुज़री-बीती बातें, लाशों की तरह जैसे उस बर्फ में दबी पड़ी थीं। बर्फ में दबी-लाशें...। मानों, अभी-अभी उनका दम निकला हो। एक-एक लाश कास्तू के सामने खड़ी हो रही थी।

बस्ती में होने वाली वह पंचायत...!

शींकू चौकीदार की बूढ़ी मां की चीख़-पुकार। वह पंचों के सामने छाती पीट-पीट कर कह रही थी, "पंचों, यह गौड़ बंगालिन मेरे बेटे का कलेजा चाट गयी है। मेरे बेटे का लहू अब भी इसके होंठों पर चमक रहा है। पंच परमेश्वरो, मेरा न्याय करो।"

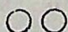
जगतू बरवाला एक टांग पर खड़ा हो कर कह रहा था, "पंचो! यह औरत नहीं, जादूगरनी है। यह ऐसी डाकिनी है, जिसने अपने दो खसमों के कलेजे खा लिये हैं।"

और दूसरी ओर छोटा-सा बच्चा गोद में लिये कास्तू एक ओर बैठी थी। वह न बेहोश थी न होश में। उसकी आंखों के आंसू बह कर खुश्क हो गये थे। वहां अब आंसुओं के स्रोतों में कीचड़ ही कीचड़ बाकी रह गया था। लेकिन कास्तू उस दलदल में भी चली जा रही थी। मानो चलना ही उसकी आस्था हो। उसके मन में एक दर्द बार-बार जागता। 'अरे चौकीदार! यह तूने क्या किया? इस दलदल में मुझे अकेला छोड़ कर तू कहां चला गया है?"

पंचों का फैसला सर-माथे पर स्वीकार करके कास्तू बस्ती से बाहर निकल गयी। उसके पीछे मर्दों ने सरसों फेंकी। औरतों ने मुट्ठियां भर-भर कर राख उड़ायी कि यह जादूगरनी बस्ती में फिर वापस न आ जाये।

कास्तू ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। वह, अपनी कांटों भरी यात्रा का एक और मोड़ पार कर आई थी।

उसके आगे उबड़-खाबड़ रास्ता था जिसकी निचली ओर एक नाला बहता था। रास्ते से कुछ हटकर एक गुफा-सी बनी थी, जहां सर्दियों में चरवाहे आकर ठहरा करते थे। उसी गुफा में कास्तू ने अपने बच्चे को ले कर गृह-प्रवेश किया।



तीतर धूल में लोट रहा था । कास्तू गौर से उसकी ओर देख रही थी । वह अपने मन में कहने लगी "बेटा, मैं भी एक पक्षी ही थी । न जाने किस गलती से विधाता ने मुझे इंसानी रूप में डाल दिया है ! लेकिन भाग्य का फेर देखो कि इंसानों ने भी मुझे अपनी बिरादरी से ही खारिज कर दिया है ! न मुझे रहने दिया, न उड़ने दिया ।"

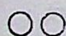
उसी समय चरवाहे लड़के, पशुओं को लेकर घर लौटते हुए, उसे देख कर चिल्ला उठे...कांसू...कांसू...कांसू...।"

कास्तू भी जैसे उन्हीं की प्रतीक्षा में बैठी थी । वह उन लड़कों से भी ऊंची आवाज़ में चिल्ला उठी, "हां, हां, यह कौड़ू तीतर नहीं, बल्कि कांसू ही है...कांसू...तुम्हारी मां का खसम !" यह सुन कर बच्चे हंसी से लोट-पोट हो गये ।

बस्ती के बूढ़े-जवान, आज भी सुरगल देवता की सौगन्ध खा कर कहते, "कांसू का कलेजा भी कास्तू ने ही निकाला था ।"

और जगतू बरवाला भी ढोल और थाली के ताल पर गर्दन हिला कर "कन छांटने" यानी जादू के ढोंग पर चावलों के दाने गिन कर अतीत और भविष्य का हाल बताते हुए कहता था..."कांसू की आत्मा कास्तू के इसी काले तीतर के अंदर कैद है । यह कोई मामूली औरत नहीं है, यह गौड़ बंगाले की डायन है ।"

ये बातें मानों हवा के घोड़े पर सवार हो कर कास्तू के कानों तक भी जा पहुंची । वह जगतू बरवाले का नाम ले लेकर जमीन पर थूकती और अपने बाल इस तरह नोंचने लगती, जैसे वह अपनी नहीं जगतू की लटें नोच रही हो ! "ऐ बरवाले ! गूगल धूप की सुगन्धी में छुपा हुआ तेरा असली रूप मैं पहचानती हूं । तेरा नीच काम, उपलों के नीचे पलने वाले गंदे कीड़ों से भी अधिक मलीन है । ऐ पापी, तेरा पापों से भरा हुआ शरीर लोहे के झुंडों की मार से, और अधिक पापी और निर्लज्ज हो गया है..."



कास्तू अपने पति को अपना मालिक ही नहीं, बल्कि घर का चिराग भी समझती थी । घर तो अब उजड़ चुका था, लेकिन चिराग की तो उसे, उस गुफा में भी जरूरत थी और कास्तू का यह आखिरी चिराग था कांसू...जिसका न घर था न घाट । वह कस्बे की कचहरियों में झूठी गवाही देता और बस्ती से नाजायज़ शराब ले जा कर कस्बे में बेचा करता था । वह स्वयं भी पक्का शराबी था ।

एक दिन शाम को वह अधिक पी कर नाले के पार गिर पड़ा। गिरना उसके लिए कोई अनहोनी बात नहीं थी, क्योंकि अपने जीवन में वह चला कम और गिरा अधिक था।

अगली सुबह कास्तू ने वहां जा कर देखा कि वह वहां बेहोश पड़ा था। कास्तू घबरा गयी। माथा फूटे इस भाग्य का! अब एक कलेजा और उसके जिम्मे लगने वाला था। वह उसके पास गयी। कांसू की सांस अभी चल रही थी। वह उसे उठा कर घर ले आयी और दस दिन तक उसकी सेवा करती रही।

बच्चे को पीठ पर लादे, वह कस्बे में जा कर 'परोला', झाड़ू और 'छकरियां' बेचती और उन पैसों से कांसू के लिए दवाई खरीद लाती।

कांसू अच्छा हुआ तो एक दिन उसकी आंखों में आंसू आ गये। वह कहने लगा, "कास्तू, मुई इस बार तो तूने मुझे बचा लिया लेकिन मुझे आखिर एक दिन कहीं रास्ते में ही गिर कर मरना है।"

कास्तू जवाब देती, "अगर मैं बचाने वाली होती, तो अपने दो खसमों-महाशे और चौकीदार को न बचा लेती! नहीं, मैं बचाने वाली नहीं, खानेवाली हूं। बस्ती का बच्चा-बच्चा मुझे गौड़ बंगालिन कहता है।"

कांसू ने जवाब दिया, "पहले तो तू नहीं थी, लेकिन अब इस बियाबान में रह कर जरूर ही गौड़ बंगालिन हो जायेगी। अरी मुई, आदमी को आदमी का सहारा होता है"।

कास्तू एक ठंडी आह भर कर कहती, "कांसू, विधाता ने मेरी मांग के लिए सिंदूर नहीं, उपलों की राख लिखी है। इसलिए मैं जिधर भी जाती हूं, मुझ पर राख ही पड़ती है।"

कांसू अपनी छाती ठोंक कर कहता, "कास्तू मुई, अगर यह बात है तो कांसू विधाता के लिखे को मिटा कर तेरी मांग में सिंदूर भरेगा।"

महाशों की बस्ती में एक बार फिर भूचाल आ गया!

औरतों में चर्चा हो रही थी, "ये मर्द निगोड़े भी.. इनका सीना जले! कैसे गये-गुजरे होते हैं। ये देखो न, वह गौड़ बंगालिन की रांड, मुस-मुस कर के उनके कलेजे खाती जा रही है और ये मर्द फिर भी उसी की ओर घिसटते चले जा रहे हैं। मानो, वही रांड इस दुनिया में एक हुसन-परी रह गयी है।

और मर्दों की टोली में चर्चा चल रही थी, "यह साली महाशी सिर्फ डाइन ही नहीं है, इसके पास कोई वशीकरण मंत्र भी है देख लो एक के बाद एक परवाना उस की रूप-ज्वाला पर जान देने को आ जाता है।"

उधर जगतू बरवाला अपने शरीर को थरथरा कर और छाती बजा-

बजा कर भविष्यवाणी कर रहा था, "यह करकसा, डाकनी एक दिन कांसू का कलेजा भी निकाल कर खा जायेगी। अगर ऐसा न हुआ, तो सुरगल देवता का यह चेला, भेड़ें मूंड़ने वाली कैंची से अपनी यह लटें कटवा देगा। जय सुरगल देवता...तेरी साम...।"

कांसू यह सब बातें सुन कर आंखें बंद कर लेता और ज़ोर का कहकहा लगा कर कहता, "कास्तू, तू बिलकुल चिंता न कर मेरे कलेजे को शराब पहले चाट चुकी है तू उसे कैसे खाएगी?"

सूरज की सुनहरी टिकिया पश्चिम में डुबकी लगाने की तैयारी में थी। कास्तू के शरीर का अंग-अंग जैसे टूट रहा था।

सूखे हुए उपले उसने एक ओर कर दिये, तो कौड़ू ने उस जगह, जी भर कर दीमक का शिकार किया और फिर आड़ू के वृक्ष की एक टहनी पर बैठ कर चोंच से अपने पर खुजाने लगा। उसके गले में पड़ा हुआ वह छोटा-सा घुँघरू बजने लगा। यह आवाज़ सुन कर कास्तू के सामने उसके बीमार बच्चे के दो छोटे-छोटे कोमल हाथ आ गये जिनमें कंगन पड़े हुए थे। यह कंगन आखिरी बार तब छनके थे, जब कास्तू ने बच्चे के बुखार से तपे हुए हाथों से उन्हें उतारा था। कितनी देर तक वह उन छोटे-छोटे कंगनों को घूर-घूर कर देखती रही थी और फिर उनमें से एक घुंघरू उतार कर वह कंगन उसने कांसू को दिये और एक और एक आह भर कर बोली थी, "ये कंगन मेरे चौकीदार ने बड़े ही चाव से बनवाए थे।"

चौकीदार का नाम सुन कर कांसू तुनक कर बोला, "अगर तेरा बच्चा बच गया, तो मैं इसे सोने के कंगन बनवा दूंगा। अरी, मैं भी अदालतों का सूरमा हूं, जिसके खिलाफ गवाही दे दूं...।"

कांसू डॉक्टर को बुलाने के लिए शहर चला गया। कास्तू अपने कमज़ोर, दुबले बच्चे को गोद में ले कर उसकी ओर ममता-भरी नज़रों से देख रही थी। बच्चे को मियादी बुखार हो गया था। वह बेचारा इस तरह कराह रहा था जैसे कोई जंगली बिल्ली कहीं दूर बोल रही हो।

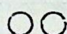
दिन चढ़ गया लेकिन कांसू डाक्टर को ले कर नहीं पहुंचा। और कास्तू का इकलौता बेटा उसकी गोद में ही सदा के लिए सो गया। देर तक कांसू के लौटने की राह देख कर, आखिर दोपहर के बाद, कास्तू ने नाले के पार जा कर एक गढ़ा खोदा और बच्चे को उस में लिटा दिया।

वह विलाप कर रही थी, "बच्चे, मैं, बस्तीवालों के डर से ज़ोर-ज़ोर से रो भी नहीं सकती, क्योंकि मेरा रोना सुन कर वे कहेंगे कि मैंने अपने बेटे का कलेजा भी खा लिया है। बेटे, मैं तेरा इलाज भी न करवा सकी। उल्टे मैंने तेरे हाथों के कंगन भी छीन लिये मेरे बेटे...।"

एक दिन और एक रात कास्तू अपने बच्चे की 'मढ़ी'[1] पर बैठी रोती रही, लेकिन कांसू वापिस नहीं आया। दूसरे दिन सवेरे 'खलदरा'[2] ढोने वाले मज़दूरों ने बस्ती में आकर सुनाया कि कांसू ढक्की पर मरा पड़ा है।

बस्ती के किवाड़ और दरवाज़े एक बार हिल उठे।

रात को सुरगल देवता के थान पर ढोलक और थाली छनछना उठी। जगतू अपनी लटें नचा-नचा कर 'जातर' दे रहा था, "जय सच्ची शक्ति वाले! ···अपने चेले के बोल सच्चे करने वाले देवता, तेरी साम !! जय-जय सुरगल महाराज!"



गर्मियों में कास्तू हर रोज़ अपने बच्चे की मढ़ी पर बासा के हरे पत्ते बिछा आती, ताकि उसके जिगर के टुकड़े को धूप न लगे।

एक दिन वह बासा के पत्ते तोड़ रही थी कि झाड़ी में से काले तीतर का एक बच्चा कुर-कुर करता हुआ निकल भागा। कास्तू ने भागकर उसे पकड़ लिया। उसे ज्यों लगा जैसे उसका बेटा ही तीतर बन कर लौट आया हो। वह अपने बच्चे को कौड़ू कह कर बुलाती थी। इसलिए तीतर को भी वह इसी नाम से बुलाने लगी। अपने बच्चे के कंगन से उतारा हुआ घुंघरू उसने कौड़ू तीतर के गले में बांध दिया था।

उधर जगतू ने बस्ती में यह अफवाह फैला दी थी कि कौड़ू तीतर में कास्तु ने अपने बेटे की आतमा को कैद कर रखा है। कास्तु ने यह सुना तो वह तड़प उठी, "माथा फूटे इस पापी बरवाले का। कौड़ू तो मेरा जिगर का टुकड़ा है, मेरा लाडला है, जो नाले के पार आज भी मढ़ी में चुपचाप लेटा हुआ है।

कार्तिक महीने के सूने-सूने आसमान पर लाली छायी हुई थी। कास्तू अपने घुटनों पर हाथ रख कर उठी। कौड़ू तीतर भी तक अपने परों को खुजला रहा था। कास्तु ने उसके पास आकर कहा, "आओ बेटा, कौड़ू घर चलें।" ऐसा कहते हुए कास्तू ने तीतर की ओर अपना हाथ बढ़ाया। पता नहीं क्या हुआ? शायद तीतर को भय-सा लगा और वह फुर करके उड़ गया। कास्तू बेचारी की तो जैसे जान ही निकल गई।

"कौड़ू···कौड़ू···।"

गिरती-लड़खड़ाती कास्तू उसी ओर भागी, जिधर कौड़ू उड़ा था। चबूतरे वाले बरगद के पेड़ तक वह उड़ता हुआ दिखाई दिया था। उसके बाद

---

1. कब्र। 2. Raisin (रेज़िन)।

कास्तू की आंखों में अंधेरा छा गया। और वह हाथों से मुंह ढांप कर बच्चों की तरह रोने लगी। "कौड़ू बेटा, तूने अपना धर्म नहीं निभाया। अरे! तू भी मुझे छोड़ कर चला गया!" और वह बिलख-बिलख कर रोने लगी। बस्ती के बाहर वह देर तक कौड़ू-कौड़ू पुकारती रही, लेकिन···जाने वाला बेईमान वापिस नहीं लौटा।

कास्तू की गुफा आज वीरान और सुनसान देहरे जैसी थी। कौड़ू का, बांस की तीलियों से बना खाली पिंजरा यों दिखाई दे रहा था, जैसे कास्तू की लाश पड़ी हो!

कास्तू आज फिर लहूलुहान हो गयी। उसकर सारा शरीर आज फिर रिसने लगा। वह कह रही थी, "कौड़ू बेटे, बस्तीवालों की झूठी बातों को, जगतू बरवाले की पाप-भरी अफवाहों को, मुझे बारी-बारी से छोड़ जाने वाले तुम लोगों ने सच्चा कर दिया है।"

गुफा के बाहर ज़ोर की आंधी चलने लगी। कास्तू को कौड़ू के गले में पड़ी घुंघरू की डोरी का ख्याल आ गया। वह घबरा कर सोचने लगी—"कहीं" वह डोर किसी पेड़ की टहनी मे उलझ गयी तो···?

फिर उसकी कल्पना की आंखों के सामने किसी पेड़ की टहनी से लटक कर झूलता हुआ कौड़ू आ जाता और वह घबराहट में बाहर निकल कर चिल्लाने लगती, "कौड़ू···कौड़ू···" पर उसकी दुर्बल आवाज़ आंधी की सायं-सायं में खो जाती।

दो साल पहले, एक बार कास्तू बीमार पड़ी थी तो उसे पानी पिलाने वाला भी कोई न था। उसने समझ लिया था कि यह उसका आखिरी समय आ पहुंचा है। उसे जीते रहने की चाह ही नहीं रही थी। लेकिन यह चिंता उसकी जान को कुरेद रही थी कि उसके बाद उसके इस कौड़ू का क्या बनेगा? उसकी देखभाल कौन करेगा? कौन उसे खिलायेगा, पिलायेगा? फिर जैसे किसी ने उसके अंदर से ही आश्वासन दे कर कहा कि वह अभी नहीं मरेगी। वह कौड़ू को इस तरह असहाय छोड़कर कहीं नहीं जायेगी और सच ही वह कुछ दिनों में उठने-बैठने लग गयी थी।

लेकिन आज उसका कौड़ू ही उसे छोड़ कर कहीं चला गया था। कास्तू को यों लगने लगा जैसे अब उसके जीवन का आखिरी मोड़ आ गया है।

वह ज़मीन पर लेट गयी। उसके आंसुओं के बांध आज फिर टूट गये। कास्तू एक दर्द-भरी आह भर कर सोचने लगी, मैंने क्या-क्या सोचा था और क्या हो गया! एक महीना पहले उसे पता चला था कि घोरड़ी गांव में किसी आदमी ने मादा तीतर पाल रखे हैं। कौड़ू के लिए एक मादा तीतर हासिल करने के लिए उसने किसी से सिफारिश भी करवायी थी फिर उसने सोचा

था कि अब कौडू अपनी गृहस्थी बसायेगा···और कास्तू इस तरह खुश होने लगी जैसे सचमुच ही वह किसी की सास, किसी की दादी बनने वाली हो।

कास्तू ने धीरे से करवट बदली। उसका शरीर निढाल और बेसुध हो चुका था। सांस धीरे-धीरे चल रही थी। लेकिन हर सांस के साथ 'कौडू-कौडू' की मद्धिम-सी आवाज़ आ रही थी।

इसी अर्द्ध चेतन अवस्था में रात का आखिरी पहर बीत गया। सहसा कास्तू के कानों में कोई जानी-पहचानी आवाज़ आयी। वह गहरी बेहोशी की समाधि से निकल आयी, और उठ कर बैठ गयी। सुबह की हल्की-हल्की रोशनी गुफा के अन्दर प्रवेश कर रही थी। कास्तू को महसूस हुआ, जैसे कोई उसे बुला रहा हो।

उसे ऐसा लगा जैसे बाहिर आड़ू के पेड़ पर बैठे किसी पक्षी के शायद कौडू के गले में बंधा घुंघरू बज रहा है—छन टुन, छन टुन···।

कास्तू की आंखों से ममता भरे दो आंसू टपक पड़े और हठात् उसके मुंह से निकला, "कौडू बेटे···!" □

अनु० : राम नाथ शास्त्री

तीसरा अखण्ड पाठ

□ रामनाथ शास्त्री

सरदार मंगल सिंह की नई कोठी में इस वर्ष होने वाला यह तीसरा अखण्ड पाठ है। पहला पाठ उसने नई कोठी बनवाने और गृह प्रवेश के बाद अपने इकलौते बेटे दलीप सिंह के विवाह की 'अरदास' देने के लिए करवाया था। आलीशान कोठी, शेर सा जवान बेटा और लखपती बाप की सन्तान, परियों-सी रूपवती पुत्रवधु। पहले अखण्ड पाठ के अवसर पर उस कोठी के भीतर-बाहर बासंती सौन्दर्य जगमगा रहा था। लाऊड स्पीकरों पर गुरुओं की पवित्र वाणी गूंज रही थी। लॉन में रंगीन सायबान तने थे। कुर्सियों की कतारें सजी थीं। मुहल्ले के लड़कों ने धूमधाम के इस वातावरण में अपनी महफिलें रेशमी कपड़ों की सरसराहट, उन्मुक्त ठहाके, हर जात-बिरादरी के के लोगों की घटती-बढ़ती भीड़ और बधाइयों के सिलसिले ! सभी कुछ खुशी के रंग में रंगी तस्वीरों-सा आह्लादकारी लग रहा था।

सरदार मंगल सिंह की तो बात ही और थी। वह आनन्द उत्सव के नशे में आकंठ डूबा हुआ था। दलीप भव्य ड्राइंगरूम में अपने दोस्तों के साथ व्यस्त था। उसके मित्र उसके विवाह के एलबम के फोटो देख-देख कर चुहलबाजी कर रहे थे। गहनों से लदी नवोढ़ा जीतकौर, गली-मुहल्ले की लड़कियों से घिरी उनके हंसी ठट्ठे का जवाब मुस्कराहटों से दे रही थी। औरतें तक उसके सौन्दर्य पर मुग्ध थीं।—'वाहे गुरु ! वाहे गुरु' ! कोई जीतकौर की प्रशंसा कर रहा था कोई दलीप के भाग्य को सराह रहा था। इस बात पर सभी एकमत थे कि मंगल सिंह सरीखे भाग्यवान कम ही होते हैं। यह पहला अखण्ठ पाठ इसी उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हो गया।

दूसरा अखण्ड पाठ आज से चार महीने पहले हुआ था। मंगलसिंह के इसी जवान बेटे के 'तेरहवें' पर। विवाह के सात आठ महीनों के बाद ही एक दिन दलीप की रहस्यमय परिस्थितियों में हत्या हो गई। किसी ने उसे गोली मार दी थी।

दूसरा अखण्ड पाठ उसकी आत्मा की शान्ति के लिए बिठाया गया था।

उस समय तक कोठी का ठाठ-बाठ दुगुना हो गया था किन्तु वह आंखों को चुभ रहा था। हर चीज पर अवसाद छाया हुआ था। सब कुछ डरा-सहमा था। न गली-मुहल्ले के लड़कों की महफिलें थीं, न कारोबारी बहसें थी। युवक खामोश थे सौन्दर्य कुम्लहाए हुए थे और बूढ़ी आंखों में अंधेरा और धुंध थी। हर चीज पर मृत्यु की भयावह काली छाया थी। केवल लाऊड स्पीकरों से गूंजती गुरुओं की पावन वाणी, मौत से ग्रसित उस बोझिल वातावरण में निर्भय लग रही थी। यह वाणी जीवन धारा के सारे मर्म जानती थी। इस धारा के दोनों किनारों—जीवन और मृत्यु को पहचानती थीं। मनुष्य की दृष्टि इतनी सामर्थ्यवान नहीं। इस किनारे खड़े होने पर उसकी नजर दूसरे किनारे तक नहीं पहुंचती। जीवन-प्रवाह की उत्ताल तरंगों पर डोलते जाते दीयों की झिलमिलाहट तो उसे दिखाई देती है। किन्तु अन्धेरे में डूबे दूसरे किनारे का आभास नहीं होता। वह अन्धेरा जहां रोशनियां बुझ जाती हैं, अधेरे में घुल जाती हैं। जब कभी आदमी की यह दृष्टि इस निर्मम अंधेरे तक पहुंचती है तो उसका समूचा अस्तित्व कांप उठता है। पहले अखण्ठ पाठ की अमृत-वाणी कोठी के उल्लासपूर्ण वातावरण से ऊपर आकाश में गूंजती रही थी और दूसरे पाठ के अवसर पर भी यह वाणी कोठी पर छाए अवसाद और आहों के आवरण को पार न कर सकी। कोठी के पास से गुजरता हवा का रथ इसे आकाश में ले उड़ा।

दूसरे अखण्ठ पाठ के बाद, इन चार महीनों में, सरदार मंगल सिंह की कोठी एक ऐसी जगह बन गई जहां हर समय विषैलो चुप्पी छाई रहती। सड़क के किनारे कभी इस विशाल कोठी राहगीरों की उत्सुकता का कारण कैसे न बनती? क्योंकि वहां जीवन का कोई चिन्ह नजर नहीं आता था सिवाए सरकारी गाड़ियों-जीपों से आने वाले किसी पुलिस अधिकारी, अदालती गुमाश्ते या इस हत्याकाण्ड के विचाराधीन केस में मंगलसिंह की पैरवी करने वाले किसी वकील के। कभी बीच में मंगलसिंह का पता करने कोई आ जाता या कोई डाक्टर हकीम।

अपनी सी समस्याओं के बावजूद लोगों के पास दूसरों की 'चिन्ता' के लिए समय मिल ही जाता है। इन लोगों को अब यह फिकर सताने लगी थी कि इतनी बड़ी कोठी का क्या होगा! पुत्र शोक में सरदार मंगल सिंह दिनों-दिन टूटता जा रहा है। इतने बड़े आघात को लेकर कितने दिन और जी पाएगा? उसके बाद क्या होगा? मंगल सिंह की पत्नी ने मर-मर कर और कितने दिनों मौत से जूझना है? लोगों को ज्यादा तरस घर की बहू पर आता जिसके यौवन और सौन्दर्य की बातें वे रोज सुनते सुनाते थे। वे आपस में कहते— वह इस दमघोंटू मकबरे में नहीं रहने वाली। उसका लखपति बाप उसे

तिलविल सुलगने के लिए यहां कब रहने देगा । कहते हैं उसकी इससे भी बड़ी तीन-चार कोठियां हैं। एक भाई बहुत बड़ा ठेकेदार है, दूसरा सेना में कर्नल है। बाप ने देश विभाजन के बाद दिल्ली आकर एक ढाबा खोला था जो आज 'लिबर्टी' नामक होटल के रूप में उन लोगों का मज़ाक उड़ाता है जो कहते हैं भाग्य का कोई महत्व नहीं । कोई बताए, बिना भाग्य के आदमी को ऐसी युक्तियां कहां सूझती हैं जिससे धनवर्षा होती है.... पर भाग्य कभी-कभी दयालु होने के बावजूद आदमी को छल जाता है। मंगल सिंह और उसके इकलौते बेटे के साथ भाग्य ने यही खेल खेला है।

दलीपसिंह के स्नातक होने के बाद मंगलसिंह ने अपना ट्रांसपोर्ट का सारा कारोबार उसे सौंप दिया था। एक तो दलीप शिक्षित युवक था, दूसरे कारोबार पहले से स्थापित था। सात-आठ हजार रुपये की मासिक आय थी। लेकिन पैसा आने पर धन लिप्सा वैसे ही बढ़ती है जैसे नमकीन पानी पीने पर प्यास में वृद्धि हो जाती है।

एक आम आदमी जिन वस्तुओं की कल्पना करके मन ही मन एक स्वर्ग सजा लेता है, वे सभी सुख-सुविधाएं मंगल सिंह के पास मौजूद थीं । शराब के अधिक सेवन से वह मोटा भी हो गया था। दाढ़ी के बाल चाहे सफेद हो गए थे लेकिन चेहरे की लाली नौजवानों को शर्मिंदा करती थी । आयु साठ के आसपास थी।

दलीप अभी नौजवान था। वह सोचता—यह सब तो मेरे बाप की कमाई है। अनपढ़ बाप की। उसके शिक्षित होने का क्या लाभ यदि वह इससे दुगुनी कमाई न कर दिखाए। उसके एक रिश्तेदार ने एक दफा उसके आगे सांझे में ठेकेदारी का धन्धा करने की पेशकश की थी । उसकी बात पर नाक मुंह चढ़ाते हुए दलीप ने कहा था—टके-टके के इन्जीनियरों, ओवरसियरों और क्लर्कों को सलाम कराना चाहते हो मुझ से। काम वो है जिसमें गर्दन न झुके, किसी की खुशामद न करनी पड़े सच पूछो तो मुझे ट्रांसपोर्ट का काम भी पसन्द नहीं। हर साल इन गाड़ियों को 'पास' करवाने का झंझट, और ट्रैफिक वालों के नाज-नखरे। यह भी जलालत है।

नौजवान ट्रांसपोर्टर ऐसी बातें सुन-सुन कर अपना लीडर समझने लगे। उसकी बातों में उन्हें रस आता। वे सोचते यह कोई जन्मजात इन्कलाबी है। जिस तरफ जाएगा, रास्ते अपने आप बनते जाएंगे। उन्हें अनुमान था कि या दलीप दिल्ली सरीखे किसी बड़े शहर में कोई पांच तारा होटल खोल लेगा या कोई सिनेमा थियेटर बनवाएगा जिसके आगे जम्मू का 'के० सी०' या दिल्ली का 'गोलचा' फीके पड़ जाएंगे।

दलीप उनकी बातें सुन कर हंसता—मैं हिन्दुस्तान में तभी तक हूं जब

तक मेरे हाथ आठ-दस लाख रुपया नहीं आता। पिता जी के पैसों को मैं उनकी अमानत समझता हूं। इस पर दारजी के पोते का अधिकार हो सकता है मेरा नहीं। वे चाहें तो अपनी सारी जायदाद गरीबों में बांट दें। गुरुद्वारों को दान दे दें।

सरदार मंगलसिंह के कानों में कभी दलीप की बातों की भिनक पड़ जाती तो वह हंसते-हंसते कहता—ये सब जवानी की गर्मी है। लाखों की कमाई पर बैठा कोई भी जवान इसी प्रकार बहक सकता है। दलीप की अभी उम्र ही क्या है। लेकिन मंगलसिंह मन ही मन सोचता—व्यापारियों के बेटों में ऐसी लालसा होना आवश्यक है। आय के नए दरवाज़े खोलने की आकांक्षा कोई बुरा लक्षण नहीं है। आखिर बेटा किस का है?. मैंने भी तो यहां आकर सौ रुपये की नौकरी करके यह कारोबार यहां तक पहुंचाया है। स्वाभाविक है कि वह मुझ से तेज़ चलने की सोचेगा।

○○

लगता था दलीप को अपनी उच्चाकांक्षाओं को पूरा करने का कोई रास्ता मिल गया था। देखते ही देखते उसने दो तीन लाख रुपया कमा लिया। कहां से कमाया किस धंधे में कमाया यह कोई न जान सका। उसके कुछ अतंरंग मित्र थे। वे भी देखते-देखते अमीर हो गए। इस बात की चर्चा 'देवका' के प्रवाह समान थी जो रेत के नीचे ही नीचे बहती है किन्तु जहां कहीं कुरेदो वहीं से पानी प्रकट हो जाता है। ट्रांस्पोर्टरों में कुछ बहुत संजीदा और तजुरबेकार बजुर्ग भी थे। उनका माथा ठनका। एक ने कहा—इस प्रकार अंधेरी गलियों से जो दौलत आती है उससे घर बनते नहीं उजड़ते हैं। यह दलीप तो किसी को पल्ले ही नहीं बांधता। शुभ लक्षण नहीं हैं ये। मुंह की खाएगा। ऐसा न हो, कहीं बाप की कमाई भी समाप्त हो जाए।

ये लोग समझते थे कि दलीप सट्टा खेलता है। उसी से इतनी जल्दी वारे न्यारे होते हैं। दलीप सुनता तो कहता—मुझ से जलते हैं स्साले। कइयों का विचार था कि दलीप नशाबन्दी वाले शहरों में शराब भेजने का धन्धा करता है। इसीलिए हफ्ता-हफ्ता घर से गायब रहता है। ऐसे सभी अनुमान उस दिन झूठे सिद्ध हो गए जब लोगों ने सुना कि पाकिस्तान की सीमा के पास, उस पार के अपने साथियों से 'लेन-देन' करने के लिए गए हुए दलीप को किसी सीमा-रक्षक ने गोली मार कर खत्म कर दिया है। जिस रोज उसका शव पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल लाया गया उस दिन जैसे सारा शहर ही हस्पताल में उमड़ आया था। जितने मुंह उतनी बातें! कोई कहता सीमा रक्षकों की गोली से तीन पाकिस्तानी मारे गए। उनकी लाशें वे लोग साथ ले गए। इसे वहीं छोड़ गए। कोई कह रहा था जिस जगह यह घटना

हुई वह स्थान सीमा से तीन मील पीछे है। कोई यह कहता सुना गया, दरअसल इन दिनों सीमा के साथ-साथ सरकंडों के जंगल में शिकार के लिए सुअर बहुत जाते हैं। वहीं अंधेरे में, इसे गल्ती से अपनी ही आदमी की गोली आ लगी। एक बजुर्ग ग्रामीण का कथन इनसे भिन्न था। कहने लगा,—इनमें से एक भी बात सही नहीं। सभी अटकलें लगा रहे हैं। असलियत तो यह है कि इस काम में यह सरदार लड़का अकेला नहीं था। इनका एक संगठित गिरोह है। यह लोग हथियारों से लैस होकर वहां जाते थे। उस पार के साथियों के साथ इस प्रकार लेन-देन करना कोई खेल नहीं। लेकिन एक तो जवानी, दूसरे पैसा, तीसरे शराब और चौथे बन्दूकों-राईफलों का जिसे चाहे काट के फेंक दें, रौंद डालें। सुना है इन लोगों ने पिछले दिनों किसी पूर्व निश्चित स्थान पर अपने सीमा पार के सहयोगियों से लेन देन किया और फिर शराब पीकर किसी के घर में घुस गए। उनकी जवान बहू-बेटी देखी तो उन पर बोलियां कसने लगे। घर पर अकेला बूढ़ा था, उसने लहू का घूंट पीकर उनकी बदतमीज़ी सह ली। उसका बेटा रात को पहरेदारी के लिए कहीं गया हुआ था। सुबह आकर उसने पूरी बात सुनी। बड़े धैर्य से बाप को दिलासा दिया। सब्र करने के लिए उसने कहा 'अवश्य' पर स्वयं बेसब्री और क्रोध से पागल होकर उन लोगों का सुराग लगाता रहा। आज रात ये फिर सरहद पर गए हुए थे। जीप इनके पास थी। उस आदमी ने उन्हें आते देख लिया था। उसने इनके आने जाने के रास्ते पर सोच-विचार किया और फिर अपने गांव के समीप कोई दो मील पीछे एक मोड़ पर एक पुली के नीचे छिप गया। रात के आखरी पहर इनकी जीप को आते देख अपनी बंदूक सीधी कर ली। यही लड़का, जो मारा गया है जीप चला रहा था। उसने पुलिया पर जीप के पहुंचते ही निशाना बांध कर गोली चलाई। गोली इसके सिर पर लगी और खोपड़ी ही उड़ा कर ले गई। जीप रुक गई लेकिन डेढ़ दो फरलांग आगे जब वह एक वृक्ष से टकराई। बन्दूकें लेकर दो-तीन साथी पीछे की तरफ दौड़ते आए पर वह जवान तब तक छू मंतर हो चुका था।

○○

कई दिन शहर में इसी कत्ल की चर्चा रही। लोग अटकलें लगाते रहे। किन्तु एक बात साफ थी कि सरदार मंगलसिंह का इकलौता जवान बेटा दलीप मारा गया था। हत्या किसने की? कैसे की? इस विषय में लोगों को मात्र इतनी ही जानकारी थी कि, बाप-बेटा—दो लोगों को पुलिस पकड़ लाई और उन पर हत्या का मुकद्दमा चलाया है। ए० डी० एम० की अदालत ने फर्द जुर्म लगा कर उन्हें सैशन के सपुर्द कर दिया है। सरदार मंगल सिंह ने इन चार महीनों में अपने बेटे का बदला लेने के लिए पैसा पानी की तरह बहाया। सैशन जज की अदालत में पैरवी के लिए दिल्ली से बैरिस्टर भी मंगवाया था जो कहते

हैं, दो दिनों की बारह हजार रुपये फीस ले गया था। इन्हीं दिनों फैसला भी होने वाला है। इसलिए सरदार मंगलसिंह ने इस एक वर्ष में यह तीसरी बार अखण्ड पाठ रखवाया है। उसे अपनी दौलत पर, अपने रसूख पर जो लेशमात्र अविश्वास हो सकता था, उस कमी को पूरा करने के लिए उसने परमात्मा की मदद लेने की यह तरकीब लड़ाई थी। अदालत का पूरा मामला लगभग ठीक था। एक चीज जो मंगलसिंह के वकीलों को और सरकारी वकील को परेशान कर रही थी। वह थी बाप-बेटे दोनों का इकबालिया बयान और हत्या का सारा दोष अपने ऊपर लेकर दूसरे को बचाने का प्रयास। बाप-बेटे का एक जैसा बयान था कि वह उस सीमा क्षेत्र का बार्डर स्काऊट है। ये लोग सीमा पार के लोगों से मिल कर तस्करी करते थे। उस रोज भी ये सीमा के पास, सरकंडों में छिपे टार्च से उस पार इशारे कर रहे थे कि मैंने इन्हें देख लिया। मैंने पोजीशन संभाल ली और जब उनके पाकिस्तानी साथियों के आने की आवाज सुनी तो अन्धेरे में उन पर एक गोली चलाई। मेरी गोली किसी को नहीं लगी लेकिन सीमा पार के तस्कर भाग गए। इधर इन लोगों ने मुझ पर एक साथ दो-तीन फायर कर दिए। मैं पत्थरों के पीछे था। इन पर फायर करने का मेरा कोई इरादा नहीं था। किन्तु जब मैंने अंधेरे में, केवल अन्दाज़े पर ही इनकी तरफ फायर किया तो मुझे पता चल गया कि वह सरदार वहीं ढेर हो गया है। इसके साथी पहले तो भागने लगे लेकिन फिर इसकी लाश उठा कर ले गए।" बाप का बयान भी यही था और बेटे का भी। पुलिस ने इस घटना को दूसरा ही रंग दिया था। वही जो उस दिन उस बूढ़े ग्रामीण ने अस्पताल में लोगों को सुनाया था। सरकारी वकील और मंगलसिंह के बैरिस्टर ने यह साबित करने का प्रयास किया कि घटना सरहद से चार मील पीछे उस जंगल में हुई जहां ये लोग शिकार खेलने गए थे। घर से इतनी दूर आकर, चलती जीप में गोली से आदमी को मारने का काम बूढ़े के बस का नहीं हो सकता। उनकी कोशिश थी कि बूढ़े के जवान बेटे को ही फांसी हो।

पुलिस और मंगलसिंह को पूरा विश्वास था कि बूढ़े सिपाही का जवान बेटा किसी प्रकार फांसी के फंदे से बच नहीं पाएगा।

यह तीसरा अखण्ड-पाठ मंगलसिंह ने अपने बेटे का बदला लेने की कोशिशों में रही-सही कसर को पूरा करने के लिए रखवाया था। वैसे कहते कि इसमें उसके वकीलों और डाक्टर का भी बहुत हाथ था। वह इस तरह कि, इन चार महीनों में मंगलसिंह बेतहाशा पीने लगा था। जब भी बेटे की याद शूल बन कर कलेजे में गड़ने लगती, वह शराब का सहारा लेता। इस उम्र में इतनी शराब ने उसे रुग्ण कर दिया। डाक्टर उसे शराब पीने से रोकते थे। उनका कहना था कि अगर मंगल सिंह इसी प्रकार शराब पीता

रहा तो जल्दी खाट पकड़ लेगा। उसे हृदय रोग हो जाएगा, लकवा मार जाएगा या दिमाग की नस फट जाएगी। पर मंगलसिंह मजबूर था। इसलिए भी डाक्टरों-वकीलों ने उसे यह पाठ रखवाने की प्रेरणा दी थी। उनका ख्याल था कि दुःखी इन्सान को एक सहारा भगवान का भी होता है। शायद ग्रन्थ साहब के पाठ के दिनों वह शराब कम कर दे या बिल्कुल ही न पिए। एक सप्ताह भी अगर मंगलसिंह शराब से दूर रह जाए तो भी उसकी तबीयत संभल सकती है। दूसरे उन्हें विश्वास था कि गुरुओं की पवित्र वाणी उसके दुःखी दिल को अवश्य शान्ति प्रदान करेगी।

सरदार मंगलसिंह के हितैषियों को यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि इस बार सचमुच गुरु वाणी ने उसे बड़ी आत्मिक शान्ति दी। कमजोरी के कारण वह बैठ नहीं पाता था, इसलिए बरामदे में फर्श पर एक दरी डाल कर बड़ी श्रद्धा से वाणी का 'श्रवण' करता। एक-एक शब्द उसके हृदय को छूता जाता। कान गुरुवाणी के बोल सुनते रहते। कोई-कोई बोल उसके कानों और हृदय में बहुत देर तक गूंजता रहता। उसके कानों में बोल गूंजे

'मित्रां, दोसत, माल धन, छोडि चले पति भाई
संगी ना कोई नानका ! उह देस अकेला जाई ।।

मंगल सिंह उठकर बैठ गया। उसने मन से गुरू का यह वचन दोहराया। एक बार फिर दुहराया और तीसरी बार उसकी आंखों से अपने आप आंसू बहने लगे। वह जितना इन वचनों पर विचार करता, उतनी अधिक उसे घबराहट होने लगती। गुरु नानक जी क्या कह रहे हैं, और मैं आज तक किस रास्ते पर चलता रहा हूं। उसे याद आये 1947-48 के वे भयंकर दिन जब देश विभाजित हुआ था और वह अपना घरबार छोड़ कर अपने बेटे और पत्नी के साथ सात-आठ रोज जंगलों में छिपा रहा था। मौत, गिद्धों की तरह आसमान पर चक्कर लगाती महसूस होती थी। हर आहट पर यमराज के दूतों के आगमन की आशंका से दिल दहल उठता था। उसे एक झटका लगा और एक बार फिर ग्रन्थी के बोल उसके कानों में पड़े

बिरध भयो अजहुं नहीं समुझे
कौन कुमति उरझाना !

उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसे लगा, जैसे उसका गुरु आज उस को बार-बार समझा रहा है, झकझोर रहा हैं। आज मंगलसिंह, तेर 'धन्न भाग' है। गुरु तुझ पर दयालु हुए हैं। तुझे बोध करवा रहे हैं। ऐसी घड़ी किसी बिरले के भाग्य में आती है। यह घड़ी किसी भाग्यवान के ही जीवन में आती है।

उसने हाथ जोड़कर मस्तक से छुआए और रोता-रोता ग्रन्थ साहब की चौकी के आगे आ बैठा। कमरे में कई स्त्री पुरुष थे। सभी उसे देखने लगे।

सभी हैरान भी थे कि सरदार जी इतनी कमजोरी में भी किस प्रकार धीरे-धीरे भीतर आकर बुत की तरह बैठ गए हैं। इनको क्या हुआ है ? आंखों में झड़ी लगी हुई है। वह हाथ में पकड़े तौलिए से आंसू पोंछता जाता था । लोग सोचते, ऐसा पुत्र वियोग भगवान किसी दुश्मन को भी न दे। परमात्मा की माया अपरम्पार है। दुनिया के तमाम सुखों की वर्षा भी की और यह वज्रपात भी ! इससे वह गरीबी भली जिसमें ऐसा दु:ख नहीं।

दूसरे दिन भी लोगों ने देखा कि मंगलसिंह बिना कुछ खाए-पिए दिन भर वहीं बरामदे में लेटा सोचों में डूबा रहा। उसे फिर वह जंगल याद हो आया, वही मौत का जंगल। एक-एक बात सामने आने लगी। वहां उनको बचाया था उस डोगरा फौज ने जो उस क्षेत्र से बचे-खुचे लोगों को निकाल कर भारतीय इलाके में ले आई थी।

गुरु की वाणी पुन: याद आई, "विरध भयो अजहुं नहि समझे, कौन कुमति उरझाना।" जैसे देवता ने उसे एक और चाबुक मारी हो। यादों के काफिले चलते रहे, चलते रहे। हर तरफ डर, त्रास, गरीबी, बेहाली और प्राणों का मोह ! उस समय यह दलीप पांच छ: वर्ष का बच्चा था। सात दिनों की वह भूख प्यास जवानों को भी पागल कर गई थी। यह मासूम तो सूखकर मरने वाला हो गया था। एक बार उसकी रिरियाती आवाज से तंग पड़ कर और डर कर कि कहीं कोई शत्रु आवाज सुन कर इधर आकर बची खुची पूंजी भी न लूट जाए, मंगल सिंह क्रोध से इसका गला घोंटने लगा था। सरदारनी ने मिन्नतें करके उसे रोका था सात दिनों के बाद जब उन सिपाहियों ने उनका हौसला बंधाया, रोटी-पानी दिया तो उन्हें लगा, परमेश्वर ने उनकी सुन ली। उसी ने इन फरिश्तों को रक्षा के लिए भेजा है। सरदार मंगलसिंह सोचने लगा, गुरु की वाणी मुझे वही दिन याद दिला रही है।

रात को चिंतित सरदारनी दलीप सिंह के पास बैठी हुई थी। उसे धीरज बंधाने लगी तो वह बोला—दलीप दी मां, वे दिन याद हैं तुम्हें। चार मील का वह सफर कितना कठिन लगा था। चार-पांच सौ बेहाल, डरे हुए औरतों मर्दों का वह काफिला कितना भयावह था। भलीमानस, याद हैं न वे दिन ! वारी-वारी दलीप को उठाते थे और उस काफिले के साथ चलने की कोशिश करते थे। वह फौजी जमादार कितना नेक आदमी था। किस प्रकार उसने काफिले की दोनों तरफ अपने सिपाही लगा रखे थे। दुश्मन अगर कहीं से छुपकर वार करता तो सबसे पहले टकराव जवानों से होता। जान हथेली पर रख कर वे हमारी हिफाजत कर रहे थे ! हम दोनों थक कर चूर हो गए थे। दलीप और उन दो चार कम्बलों को उठा कर एक कदम तक चलना मुश्किल हो गया था। तूने कम्बल फेंक देने को कहा था। पर सर्दी का मौसम था, सोचा रात ठंड से न मर जाएं कहीं। वाहे गुरु ! बीमार दलीप स्वयं एक

कदम भी नहीं चल सकता था। हम दोनों निराश होकर थके-हारे रास्ते में बैठ गए थे। उनमें अपने गांव वाले भी थे और मित्र-संबंधी भी। लेकिन किसी ने हमारे साथ आंखें नहीं मिलाईं। मिलाते भी कैसे ? उस समय जीवन और मृत्यु के बीच अन्तर ही कितना था। दलीप की मां, उस वक्त हम दोनों ने मालिक को याद किया था। तू रोने लगी थी। तुझे देखकर दलीप भी रोने लगा था। वे चार पांच मील हमें चार सौ मील लगे थे। पीछे छूटने का अर्थ था मौत। किनारा सामने था, डूबने वाले की तरसती नजर उसे देख रही थी और थोड़ी दूर मौत का मगरमच्छ अपना शिकार पकड़ने के लिए पानी के भीतर ही भीतर रेंगता आ रहा था ! वाहे गुरु ! वाहे गुरु ! तेरी ओट।

—देखी थी तूने करतार की माया, दलीप दी मां ! 'जा दिन तेरो कोई नांहि, तां दिन राम सहाई। सोचते थे दलीप किसी तरह बच जाए तो खानदान का नाम रह जाए। पर बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। बस यही तसल्ली थी कि दोने जने उस सांझी किस्मत को भोगने के लिए तैयार थे। एक बार तुमने कहा था—सरदार जी, आप चले जाओ। मुझे और दलीप को गुरु के आसरे छोड़ जाओ। उस समय वही डोगरा जमादार चक्कर लगाता हमारे पास आ गया था। मुझे आज भी उसके वे बोल याद हैं, 'दलीप दी मां सरदार जी हौसला रखो, हिम्मत से काम लो, बस यही चार पांच मील खतरे के हैं। आगे अपना वतन है, अपना देस है, अपने लोग हैं। तेरी आंखों में आंसू आ गए थे। जमादार हमारी बेबसी समझ गया था। उसने दलीप को अपने कंधे पर उठा लिया था। उस दलीप को जिसके कपड़ों में बदबू थी, शरीर में बदबू थी। चार मील दलीप को उसने स्वयं और अपने सिपाहियों की सहायता से उस जगह पहुंचाया था जहां पहुंच कर जीवन आशा फिर चमकने लगी थी। कैसे दिन थे वे दलीप की मा ! कैसे दिन थे वे !

मंगल सिंह ने तौलिए से आंसू पोंछे और निढाल होकर लेट गया। आंखें बन्द करने पर लगा, स्मृतियों का काफिला बड़ी तेजी से उसके मन पर कई आकृतियां बनाता मिटाता निकलता जा रहा है। सत्तरह- अठारह वर्षों में उसने इतनी जायदाद कैसे बना ली ? इस करामात के सभी दांव-पेच उसकी आंखों के सामने से घूम गए ! वह सोचने लगा, वह डोगरा जमादार पच्चीस तीस रुपये पेंशन लेकर कंडी के किसी इलाके में या किसी पहाड़ी गांव में पता नहीं किस प्रकार दिन काट रहा होगा ! मैंने वहां उसके साथ दोस्ती की थी। उसे विश्वास दिलाया था कि उसे कभी नहीं भूलूंगा। लेकिन फिर कभी उसकी याद हो नहीं आई। क्यों नहीं आई ? क्या इसीलिए कि मैं पैसे वाला हो गया था ? यह गुरुवाणी मैं रोज पढ़ता था, 'सुमरन भजन दया नहीं कीन्हीं तो मुख चोटा खाएगा'। एक बार भी इन वचनों का भाव जानने की कोशिश नहीं

की। एक मशीनी सिलसिला था। एक अंधी और बहरी रस्म की गुलामी थी, दलीप दी मां।

मंगल सिंह उठ कर बैठ गया—भोलिए, तुमने भी मुझे नहीं समझाया। तूं स्वयं इस माया-जंजाल में फंसी हुई थी। आज, लगता है, वे करतार हम पर दयालु हुए हैं। आज उन्होंने मेरी आंखें खोल दी हैं। दाता, कसूर मेरा है। सांई! दोष मेरा है। यह सब मेरे पापों का फल है। आज पहली बार गुरुओं की वाणी समझ आई है मुझे।

ग्रन्थी के बोल स्पीकर पर गूंज उठे!

जा दिन तेरो कोई नांही
ता दिन राम सहाई !!

—सुना भागवान, वह दयालु अभी भी मदद करने के लिए तैयार है। सुना तुम ने? आज मेरे राम मुझ पर कितने दयालु हुए हैं! पर यह दया इन्होंने कहां आकर की? पहले क्यों नहीं मारी चाबुक मुझे! पहले क्यों मुझे इस रास्ते पर जाने से नहीं रोका! मगर यह भी करतार की बड़ी किरपा है कि इस समय भी उसने मेरी बांह पकड़ ली है अब कोई डर नहीं दलीप दी मां, अब कोई डर नहीं।

कोठी में एकत्रित हुए मित्र-सम्बन्धी सरदार मंगल सिंह की ऊटपटांग बातें सुन कर घबरा गए। सुबह उन्होंने बड़े डाक्टर को बुला भेजा था। डाक्टर कोई दस बजे पहुंचा। तब तक मंगल सिंह नहा धोकर, कपड़े बदल कर बड़ी शांत मुद्रा में 'जप जी' का पाठ कर रहा था। डाक्टर ने उसे 'सत श्री अकाल' कहा और दोनों बाहर आकर लॉन में कुर्सियों पर बैठ गए।

मंगल सिंह ने डाक्टर के साथ बड़ी शान्ति और धैर्य से बातें की। कहने लगा—डाक्टर जी, कल जिन्दगी के बीते हुए दिन बहुत याद आए। मैं बहुत रोया। आज मेरा जी बहुत हलका है। भूख भी महसूस हो रही है। मगर एक काम है, डाक्टर साहब, आप भी मेरे साथ चलें जरा। कार तो आप लाए ही होंगे?

—कहां जाना है? डाक्टर ने पूछा।

—ज्यादा दूर नहीं, बस पांच मिनट का रास्ता है। आप को दस मिनट में फारिग कर दूंगा। मुझे पता है आपका समय कीमती है।

वे दोनों कोठी से निकले और कार में बैठ गए।

सरदार मंगल सिंह ने ड्राइवर से कहा—यार, जरा सैशन जज की अदालत तक चलना।

पांच मिनट में वे वहां पहुंच गए। जज भी उनसे कुछ देर पहले आए थे। वे मंगल सिंह को पहचानते थे। पूछने लगे—सरदार जी आज आपके मुकद्दमे की तारीख तो नहीं है। कैसे आना हुआ ?

—जनाब एक ज़रूरी काम से आया हूं यह डाक्टर साहब हैं। जनाब इन्हें जानते होंगे !

डाक्टर कुछ घबराने लगा।

—इन्हें कौन नहीं जानता, सरदार जी ?

—डाक्टर साहब को मैं सिर्फ इतना कष्ट देने के लिए साथ लाया हूं कि वे इस बात की पुष्टि कर दें कि मैं इस समय पूरे होशो-हवास में हूं। मैं न तो बीमार हूं और न ही मेरा दिमाग या मन खराब है। क्यों डाक्टर साहब ? मंगल सिंह ने डाक्टर की तरफ देखते हुए पूछा।

डाक्टर बोला—हां, मैं प्रमाणित करता हूं कि सरदार मंगल सिंह इस समय बिल्कुल ठीक हालत में हैं और पूरे होश में हैं।

—जज साहब, अब मैं एक बयान देना चाहता हूं। आपकी इजाजत हो तो। मेरा यह बयान अपने बेटे के उसी केस के बारे में है जिसकी सुनवाई आपने की है।

जज उसका बयान लिखने के लिए तैयार हो गए।

—ज़ज साहब, मैं मकबूल दलीप सिंह का बदनसीब बाप हूं। इस समय मैं आपके सामने जो बयान देने वाला हूं वह अपने वाहे गुरु, करतार को हाजिर-नाजिर जान कर देने लगा हूं। दरअसल यह बयान मैं उस गुरु की आज्ञा पर ही दे रहा हूं। यह दलीप की पास-बुक है। यह पास बुक दिल्ली के किसी बड़े विदेशी बैंक की है। इसमें उसका एक लाख पन्द्रह हज़ार रुपये जमा हैं। उसका कुछ रुपया कहीं लॉकर में भी होगा। जनाब मैंने यह मुकद्दमा अपने पैसे के बल पर, अपने बेटे की मौत का बदला लेने की भावना में अंधे होकर लड़ा है। पर असलियत अब आपके सामने है। यह रही दलीप की पास-बुक। वह स्मगलर था जज साहब! काला धन्धा करता था। उसकी मौत वहीं हुई है जहां डोगरा जमादार और उसका बेटा कह रहे हैं। मुझे उस दिन पता चल गया था कि वह उस रोज तस्करी के लिए अपने साथियों सहित बार्डर पर गया है। मैं दलीप का बाप हूं जज साहब! आज मैं पूरे होश में हूं क्योंकि आज मैं न्याय को दलीप का बदला लेने के लिए बरगलाने नहीं आया। डोगरा जमादार से या उसके लड़के से दलीप का कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ था। यह सब मनघड़ंत कहानी है। वे दोनों बाप बेटा निर्दोष हैं। इन्होंने केवल अपना फर्ज निभाया था। इस मुकद्दमे से इन्हें जो कष्ट हुए हैं उसका प्रायश्चित करने के लिए मैं यह दस हजार रुपये का चैक उस जमादार को

और उसके लड़के को अदालत के माध्यम से देने की अनुमति चाहता हूं । आशा है अदालत मेरा इतना काम अवश्य करेगी ।

उसने जेब से एक चैक निकाला और जज के सामने रख दिया । सैशन जज ने उसे गौर से देखा और उसका बयान उसके आगे दिया, "सरदार जी इस पर हस्ताक्षर कर दें । डाक्टर साहब आप भी । सरदार जी, मैं आपका धन्यवाद करता हूं कि आपने अदालत के सामने यह बयान देकर न्याय का मान रख लिया है । मैं आपके हौसले और आपकी मनुष्यता पर आपको बधाई देता हूं ।"

थोड़ी ही देर बाद सारी अदालत में इस बयान की चर्चा हो रही थी । वहां से यह बात शहर के बाज़ारों में गलियों में और फिर घर-घर में पहुंच गई ।

मंगल सिंह अदालत से सीधे गुरुद्वारे गया । वहां गुरुवाणी का पाठ चल रहा था । उसने हाथ-पैर धोए, कुल्ला किया और सीधे ग्रंथ साहब की चौकी के सामने जाकर गले में कपड़ा डाल कर अरदास करने लगा । उसकी आंखों में खुशी के आंसू थे ।

अनु० : छत्रपाल

क़िले का क़ैदी

□ धर्मचन्द प्रशान्त

पूर्णमासी की रात थी। गजपत के किले पर चांदनी छिटकी हुई थी। सफेद शिलाओं और पत्थरों का दुर्ग। चांद की रोशनी में जगमगा रहा था। किले के अन्दर तीन दालान हैं, दो के पट खुले हुए और एक बंद। बड़ा मोटा कुंडा उसके साथ फंसा हुआ और कोई दो सेर भारी ताला लगा हुआ।

दरवाजे के पास एक आदमी चादर से शरीर को लपेटे हुए असमंजस में खड़ा था। उसने जेब से कुंजी निकाली और ताले में फंसा कर चार-पांच मरोड़ दिये, पट खुले। अन्दर घोर अंधेरा...। उसने अच्छी तरह से दरवाजा खोल दिया। वह पलटा, एक ओर चूल्हे में जल रही दीह्‌नी (चीड़ की लकड़ी) उठाई और भीतर गया।

भीतर किसी की आवाज नहीं आई। ऐसा प्रतीत हुआ किले का यह कमरा खाली है। परन्तु क्षण भर में जंजीरें खनकीं जैसे वहां कोई गाय-भैंस बंधी है। उसने मुड़कर देखा पिछली ओर एक आदमी जंजीरों में जकड़ा हुआ दीवार के साथ टेक लगाए बैठा है। वह धीरे-धीरे पैर उठाता उसके पास पहुंचा। दीह्‌नी कुछ नीचे की। उस आदमी का विकराल रूप देख कर वह सहम गया। सिर के सफेद बाल कंधे पर पड़े हुए। दाढ़ी लटकी हुई। मैला-कुचैला चोगा जैसा पहने हुए। काली सूरत भयंकर रूप। देखकर वह और डरा।

वह आदमी थोड़ा-सा हिला। जंजीरें फिर खनकीं। दीह्‌नी पकड़े हुए वह उसके और पास गया। उससे इतनी दुर्गन्ध आ रही थी कि नाक पर हाथ रखना पड़ा। कैदी ने बड़ी-बड़ी आंखें तरेरीं और मुंह से कुछ नहीं बोला। आप... आप कौन हैं? सिर पर से चादर उठाते हुए उसने पूछा। कैदी के होंठ हिले। कितनी देर हिलते रहे। वह बोलना चाहता था परन्तु आवाज मुंह से नहीं निकल रही थी। उसने फिर पूछा..."आप कौन हैं, आपका नाम?"

कुछ बोल उसके मुंह से निकले । बोला—"एक कोयला ..दो ! कोयला ?" यह कह कर वह फिर बाहर गया । चूल्हे के पास पड़े हुए कोयलों में से एक उठा कर वह फिर भीतर गया तथा हाथ में कोयला सामने दिखा कर बोला—यह कोयला है ?"

कैदी उठा । उठने में कितनी कठिनाई हुई इसकी जांच करते हुए भी वह चुप रहा । कैदी धीरे-धीरे पैर उठाता सामने वाली दीवार की तरफ जाने लगा । शरीर के साथ जकड़ी हुई लोहे की जंजीरें खनकने लगीं मानों कोई पशु जा रहा हो । दीवार के पास खड़ा हो गया । उसने कहा—"दीह्नी ऊपर कर, उसने इशारा भी किया ।

दीवार पर डोगरे अक्षरों में कोयले से लिखी हुई कितनी ही पंक्तियां थीं । "दो कोयला ।" कैदी बोला । कोयला पकड़ाते हुए उसने कैदी को पूछा- "आप कौन हैं ?" मैं कौन हूं ? लो पढ़ लो । कहकर उसने कोयले से पंक्तियों के नीचे लिखा-हट्ठू ।

"आप हट्ठू हैं ? वज़ीर हट्ठू ।"

"हां । पहली बार बारह बरसों उपरान्त आवाज़ सुनी है ।" हट्ठू ने रुंधे गले से कहा ।

हट्ठू ने उसकी तरफ देखते हुए कहा । बारह बरसों के उपरांत इस दालान के पट खुले हैं और रोशनी भी । इतना समय अंधेरे में ही गुजारा मैंने ।"

"आपको कैद किसने किया ? क्या अपराध किया था आपने ?"

हट्ठू ने उत्तर दिया, "वह देख, इस दीवार पर अपनी जीवन कथा कोयले से लिखी हुई है । मैं मर गया परन्तु कोई न कोई तो पढ़ेगा । इतनी ही मेरी कहानी है । सब-कुछ लिखा हुआ है । पढ़ लो ।"

उसने जवाब दिया, "नहीं, अक्षर मिट गए हैं और दीह्नी की रोशनी में पढ़ा भी कुछ नहीं जाता ।"

हट्ठू ने कहा, "जिस वक्त मैंने अपनी कहानी लिखी, सिर्फ नाम लिखना बाकी रहा, कोयला खत्म हो गया । नाम लिखने के लिए कोयला नहीं मिला । दो बरस गुजर गए । आज मिला है ।"

"खाना कैसे मिलता था आपको बिना दरवाजा खुले ।"

"वह देख ! दीवार में एक बड़ा सा सुराख है । इसी रास्ते रोटी नहीं... चार मोटी-मोटी रोटियां और अचार । बारह बरसों से यही मेरी खुराक थी ।",

क्या गुनाह किया था आपने जो इतनी सजा मिली ?"

"गुनाह ! मैंने महाराजा रणबीर सिंह पर गोली चलाई थी ।"

उसने हंसते हुए आगे कहा, "गोली तो लगी नहीं, हम सब पकड़े गए। इन जंजीरों में जकड़ कर इस किले में भेज दिया। पूरे बारह बरस हो गए हैं यहीं पर।"

आपको कैसे पता चलता है साल बीतने का ? उसने सवाल किया। उत्तर में हट्ठू बोला, "जब सुबह की रोशनी इस सुराख में लगती है तो मैं दूसरी दीवार पर कोयले की लकीर डाल देता हूं। वह देखो। तीन सौ पैंसठ लकीरें हो जाएं तो समझ लेता हूं कि बरस बीत गया।"

आपने महाराज पर गोली चलाई ?"

"चलाई तो नहीं परन्तु जुर्म लग गया क्योंकि बन्दूक मेरे हाथ में थी।"

"आपकी महाराज के साथ दुश्मनी थी ? वह बताएं।"

"बताता हूं। परन्तु पहले तुम अपना नाम पता बताओ। इस कमरे में कैसे आ घुसे। बाहर और पहरेदार नहीं हैं ?"

वह बोला, "सुनो, मैं नौकर हूं सरकारी। घर मेरे भिंबर हैं। मेरा नाम बलिराम है। जब महाराजा गुलाब सिंह जी ने भिंबर फतेह किया था, मेरा बाप भिंबर के राजा की फौज में था। वह लड़ते-लड़ते-लड़ते बीर गति को प्राप्त हुआ।"

हट्ठू ने सिर हिलाया, "समझ गया। तेरे मन में बाप की मौत का बदला लेन की भावना है।"

"शायद यही बात हो।" बलिराम बोल पड़ा।

"यहां तुम ही अकेले हो, बाकी सिपाही कहां गए हैं ?"

"आज सभी उस पिछली पहाड़ी पर किसी शादी मे गए हैं।"

"इस समय मैं अकेला इस किले का रखवाला हूं। सुबह तक दिन चढ़ने से पहले सभी आ जाएंगे।"

हट्ठू ने कहा, "मेरे पास आने का साहस कैसे किया ?"

बलिराम ने उत्तर देते हुए कहा, "मुझे यहां आए हुए थोड़े ही दिन हुए हैं। कोई बताता ही नहीं था कि इस कमरे में कौन है। बस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए मैंने ऐसा किया।" सिपाहियों ने इस दालान की कुंजी छुपाकर रखी थी, मैंने निकाल ही ली।

हट्ठू नीचे बैठ गया। उसने कहा, "इन जंजीरों के भारी बजन के कारण ज्यादा देर खड़ा नहीं रहा जाता। तुम भी बैठ जाओ।" दोनों बैठ गए।

सुनो मेरी कहानी। चलो, मन का गुबार तो निकले कहीं।"

मेरा जन्म शाही परिवार में हुआ। भाग्य ऊंचे नहीं थे, इसलिए शाही परिवार में ऊंचा नहीं उठ सका। क्योंकि मेरा दर्जा कम था। मैं तथा रणबीर

सिंह आयु में एक-दो साल ही छोटे बड़े थे। मैं हर समय कुढ़ता रहता क्योंकि राज परिवार में होने पर भी मुझे अपने आप को नीचा ही मानना पडता। बस यही जलन थी मन में। कभी-कभी मैं भी रणबीर सिंह जी के साथ खेलने को ललचाता परन्तु यह उनको नहीं भाता था। मुझे वह परे निकाल देते। उनका बचपन का नाम "फीहनू" था। मजाक-मजाक में मैं इस नाम से पुकारता। वह बस पीटने लग जाते थे। कई मरतबा तो छड़ियों से भी मारते। इस सब के बावजूद भी मुझे "फीहनू" कहने में बड़ा मज़ा आता। बस, यही सब दुश्मनी की जड़ बना।

वह बड़े हुए। मेरा रनिवास में जाना बन्द कर दिया गया। पता नहीं कई बरस बीतने पर उनका क्रोध उतरा नहीं। कहीं उनसे मेरी भेंट हो जाती उनकी आंखें लाल हो जातीं। मैंने कइयों से पूछा—"पिछले जन्म का ऐसा ही सम्बन्ध होगा नहीं तो राजकुमार बड़े अच्छे हैं।"

अमृतसर अहदनामे के उपरान्त महाराजा गुलाब सिंह जी ने उनको जम्मू का राज दिया और कश्मीर चले गए। मेरे ऊपर विपदा का पहाड़ टूट पड़ा। मुझे शहर छोड़ना पड़ा। आगे बहुत कुछ हुआ। बड़ी लम्बी कहानी है।"

"परन्तु आगे हुआ क्या" बलिराम ने पूछा।

"आगे"! वज़ीर ने कुछ सोचते हुए कहा। "उनके खिलाफ एक षड्यंत्र रचा गया।"

"षड्यन्त्र"।

"हां, षड्यंत्र। जिन राजाओं को महाराजा गुलाब सिंह जी ने हराकर नुक्सान पहुंचाया था, वह इस षड्यन्त्र में आ मिले।"

"कौन-कौन ?"

"मतलब ! भिंबर के राजा के आदमी। पुंछ, किश्तवाड़ के कुछ लोग ! मुझे पता चला। मन में जलन थी। मैं भी षड्यन्त्रकारी बन बैठा।"

"कितने आदमी थे उस षड्यन्त्र में ?"

"कोई चालीस।"

"ओह ! अच्छा फिर।"

"फिर ज़्यादा दिलचस्पी तो मैंने ली नहीं थी परन्तु पूछता रहता कि क्या हो रहा है। बात कहां तक पहुंची है। एक दिन सलाह हुई की महाराज साहब शिकार खेलने जा रहे हैं। वहां आठ-दस आदमी पहुंच जाएं। उनमें मेरा नाम भी था। मैंने ज्यादा सोच-विचार नहीं किया। जंगल में जा पहुंचा। आठ-दस आदमी थे।"

बलिराम ने बड़ी हैरानगी से पूछा "उसके उपरान्त क्या ?"

मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि आज रणबीर सिंह जी की हत्या की जाएगी। एक ने मेरे हाथ में बन्दूक थमाई और वह बोला, "तुम हट्ठू निशानेबाज हो। तुम्हारा निशाना कभी चूकता नहीं।"

मेरा माथा ठनका। हाथ कांपने लगे। मेरे मुंह से बस इतना ही निकला, मेरा काम...।

बस, चलाओ गोली, राजा का काम तमाम।

हाय-हाय। मैंने यहां तो सोचा भी नहीं कि यह लोग महाराजा की जान लेने की योजना बना कर आए हैं।

महाराजा की नजरें शिकार पर और षड्यन्त्रकारियों की उनकी तरफ।

"बन्दूक मेरे हाथ में ही रही। चार-पांच गोलियां चलीं। परन्तु महाराज को एक भी लगी नहीं। कहते हैं ना जिसको राखे साइयां मार सके ना कोय। भगदड़ मच गई। उनके साथ कितने ही लोग थे। सभी षड्यन्त्रकारी पकड़े गए।"

"सभी षड्यन्त्रकारी पकड़े गए।"

"उनको गोली क्यों नहीं लगी ?"

"शायद चलाने वाले निशानेबाज नहीं थे। इसीलिए तो उन्होंने मुझे बन्दूक दी थी।"

"आपका गोली दागने का मन नहीं बना था ?"

"नहीं ! मेरी उनके साथ रंजिश जरूर थी परन्तु मारना राम-राम। यह अनर्थ मेरे से नहीं हो सकता था। मैं पकड़ा गया। षडयन्त्रकारी कहलाया। इसका प्रमाण मेरे हाथ में बन्दूक थी।"

बलिराम ने पूछा, "बाकी षडयन्त्रकारियों के साथ क्या हुआ ?"

"कहा है न सभी पकड़े गए।"

"उन पर मुकद्मा चला ?"

"न जी ! कोई मुकद्दमा नहीं चला। एक रात सारे के सारे फांसी चढ़ा दिए गए।"

"सभी में से आप बचे।"

"हां, मुझे फांसी नहीं दी। परन्तु, जो सजा मैं भुगत रहा हूं, फांसी से बदतर है।"

परन्तु यहां अदालतें हैं फिर महाराज साहब ने यह क्या किया ?

मैंने सुना था कि दीवान किरपा राम ने अपने खास अधिकार से सभी को फांसी चढ़ा दिया।"

हट्ठू ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, ''यही मेरी कहानी है।''

''बारह बरसों से नर्क भोग रहा हूं। कहते हैं कि नर्क में यमदूत तो मिलते हैं परन्तु यहां आज बारह बरसों उपरान्त मनुष्य की शक्ल दिखाई दी है। पूरे बारह बरस इन लोहे की जंजीरों में जकड़े हुए दिन-दिन काट रहा हूं।''

बलिराम ने दुख प्रकट करते हुए कहा, ''आपका गुनाह यही था कि षडयन्त्र में शामिल हो गए थे परन्तु, सजा बड़ी संगीन मिली।''

उसने सिर हिलाते हुए कहा, ''मेरे भाग्य में यही लिखा हुआ था। अच्छा बलिराम तुम जाओ। वे लोग आ रहे होंगे। मारो ताला, जाओ।''

''वह क्यों ? हट्ठू ने बड़े अचरज से पूछा।''

''मैं समझता हूं आप निर्दोष हैं। सजा बड़ी संगीन है। मैं आपको इस कैद से छुटकारा दिलाऊंगा।''

''छुटकारा कहकर हट्ठू हंस पड़ा। इसका मुझे कभी सपना भी नहीं आया।''

छाती पर हाथ रखते हुए बलिराम ने कहा, ''वज़ीर जी, आज अवसर बड़ा अच्छा है। बाहर कोई पहरेदार नहीं है। चलो अब यहां से।''

''तुम मुझे ले कहां जाओगे ? दो मन पक्के जंजीरों में जकड़ा हुआ, यह सोच लो।''

बलिराम उठ खड़ा हुआ। ''चलो ज्यादा तो चलना नहीं पड़ेगा। सिर्फ यह पहाड़ी उतरनी है आगे जिम्मेदारी मेरी।''

''यदि मैं न जाऊं।'' हट्ठू ने गूढ़ी सोच में कहा।

बलिराम ने ज़ोर से माथे पर हाथ मारते हुए कहा, यदि नहीं जाओगे तो यह पट बन्द हो जाएंगे। यह तब खुलेंगे जब आपकी लाश की दुर्गन्ध बाहिर सिपाहियों तक पहुंचेगी।

हट्ठू ने और हठ नहीं किया, ''चलो भाई ! पता नहीं आगे क्या लिखा है भाग्य में।''

दोनों बाहर आंगन में आ गए। हट्ठू ने कितने अरसे बाद आकाश देखा और चांद भी।

किले का बाहर का दरवाजा बन्द था। वह दीवाल पर चढ़ा और पता नहीं कैसे बाहर छलांग लगाई उसने। थोड़ी देर में पत्थर से ताला तोड़ने की आवाज सुनाई दी। बाहिर का द्वार खुला। दीह्नी फेंक दी उसने।

वज़ीर बोला, ''ज़ंजीरों में जकड़े हुए होने के बावजूद भी मैं अपने आपको आज़ाद समझ रहा हूं।''

बलिराम ने जंजीरों का कुछ भार उठा लिया। हट्ठू का हाथ पकड़े हुए पहाड़ी से नीचे उतरना शुरू किया दोनों ने।

उसने कहा, "इन जंजीरों को काटने के लिए मेरे पास छेनी है।"

"छेनी ?"

"हां, इसके साथ आपकी जंजीरें काटूंगा परन्तु कहीं और जगह जाकर। आओ मेरे पीछे-पीछे।"

हट्ठू ने देखा पहाड़ी के नीचे चन्द्रभागा बड़ी शान से बह रही है। चांदनी पड़ने के कारण इसका जल बिल्कुल चांदी जैसा दिख रहा है। चीड़ के वृक्षों को हवा हिला रही है। ठंडी-ठंडी हवा के झोंके चल रहे हैं।

हट्ठू शायद जंजीरों के बोझ से थकावट महसूस कर रहा था।

वज़ीर बोल पड़ा, "भाई, यह भार बारह बरसों से उठाया हुआ है। मेरी कैद की पोशाक है। कपड़े फट कर चीथड़े हो गए हैं परन्तु यह जरा भी घिसी नहीं।"

बलिराम ने हट्ठू का जंजीर वाला हाथ अपने कंधे पर रख लिया।

हट्ठू और बलिराम दरिया के किनारे के पास आ गए। उसने पूछा—बलिराम, दरिया पर क्या बंदोबस्त है मेरे लिए। हमें करना क्या है ?"

"बस थोड़ा ही सफर और है। थोड़ा और नीचे चलो।"

दोनों चन्द्रभागा के किनारे के पास आ गए। वहां कोई दस-शहतीरों का दरेरा रस्सों के साथ बंधा हुआ था।

"यह क्या है ?" हट्ठू ने पूछा।

यह हमारे लिए पानी का विमान है। इस पर बैठ जाओ। यह दरेरा कल सुबह होने से पहले अखनूर पार करके हमें अंग्रेजी राज्य में पहुंचा देगा। वहां पहुंचते ही यह जंजीरें काट दूंगा। हट्ठू ने कुछ गर्दन हिलाते हुए कहा, "कोई और राह नहीं है यहां से निकलने की।"

"बलिराम बोला", बज़ीर जी। हम भाग रहे हैं। यदि सीधा रास्ता पकड़ा तो पकड़े जाएगे। यह जंजीरें···।

"हैं, हम भाग रहे हैं ?" हट्ठू ने सतंक होकर पूछा।

"क्यों, इस में आपको शक है ? वजीर जी, हम भाग रहे हैं। हमारा यह दरिया ही भगाने में सहायक है। चलो, बैठ जाओ दरेरे पर, देर हो रही है।"

हट्ठू ने तेवर चढ़ाते हुए कहा, "हम भाग रहे हैं ?"

बलिराम ने एक बार माथे पर हाथ मारा, "वज़ीर जी हम भाग रहे हैं। हम को कहीं से निमन्त्रण नहीं आया है कि मेहमान बन कर जा रहे हैं।"

"यार, यह तो मैंने सोचा ही नहीं था। भाग रहे हैं।"

बलिराम बोल पड़ा, "मैंने आपकी बात समझी नहीं महाराज।"

हट्ठू बोला, "बलिराम, मैंने गजपत किले में बारह बरस गुजारे संगीन कैद में। मैंने महाराज के खिलाफ साज़िश में शामिल हुआ था। बड़े साहस का काम था। आज मैं भाग रहा हूं। नहीं, मैं भागूंगा नहीं। मैं भगौड़ा कहलाऊंगा।"

बलिराम, "मैं आपकी फांसी से ज़्यादा काटने लगा हूं। किले से बाहर आ गए हो।"

हट्ठू ने ऊपर की तरफ देखा, फिर बोला, "मैं पलट जाऊंगा। भागने का कलंक माथे पर नहीं लगाने का।" लोग क्या कहेंगे, आखिर भाग ही गया न। नहीं, यह नहीं होगा। कभी नहीं।" बलिराम ने क्रोध में बेड़े पर छलांग लगाई और रस्सा खोल दिया। बेड़ा चल पड़ा। हट्ठू ने फिर किले की तरफ कदम बढ़ाया।

एक दरेरे पर आज़ाद होने जा रहा था और दूसरा फिर किले की संगीन में कैद होने को डग भरने लगा था।

अनु० शशि पठानिया

पहाड़ी कौआ

□ मदनमोहन

गर्मियों के दिन होते या सर्दियों के वह प्रति दिन हमारे हां दूध देने आता था। उसका असली नाम तो गुजरू था परन्तु घर में हर छोटा बड़ा उसे पहाड़ी कोआ ही कह कर पुकारता। असल में उसका उपनाम पहले पहल पर्णी ने ही प्रचलित किया था और उसे इस नाम से पुकारने के अनेक कारण भी थे। एक तो यह कि वह दूर स्थित सुद्धमहादेव के पहाड़ों का वासी था और दूसरे वह बातूनी बहुत था। कौए की तरह छोटी-छोटी आंखें इधर-उधर घुमा कर अपनी बोली में बड़ी ही प्यारी-प्यारी बातें करता।

हमारे घर में वह दिन में दो बार दूध देने आता था। सवेरे और शाम को। प्रातः जब सारा घर नींद की गोद में दुबका होता तो हमारे घर की सांकल जोर-जोर से बजने लगती, बेचारी पूर्णी नींद से बोझिल आंखों को हाथों से मलती हुई और 'पहाड़ी कौए'' पर दांत पीसती हुई उठती। उधर काएं-काएं करता, कहकहे बिखेरता इधर-उधर की लाख बातें उड़ाता हुआ वह घर में प्रविष्ट होता फिर पूर्णी से उलटी सीधी बातें कहते हुए दूध का डोल उसके हाथ में देता। हमारी मां जी के कमरे के द्वार ''खड़-खड़, खड़ाव'' बजने लगते—''उठो मां जी, भोर हो गई।'' हमारी मां जी हंसते-हंसते छोटी-मोटी गालियों का प्रसाद बांटते हुए—''हट कलमुंहे सुबह सवेरे तेरा मुंह देखती हूं और सारा दिन जलते-भुनते कटता है, परे हट !'' यह सुन कर वह खिलखिला कर हंसने लगता। ''झूठ मां जी, बिलकुल झूठ। पूर्णी से पूछ लो। वह सुबह-सुबह मेरा चांद-सा मुखड़ा देखती है तो सारा दिन कितनी प्रसन्न रहती है।'' और पूर्णी जलती-भुनती, रसोई घर से बाहर निकल आती—''तुम्हारा मुखड़ा चांद तो है पर अमावस्या का। सुबह से लेकर रात तक तुम्हारी जिह्वा कैंची के समान 'कुतर कुतर' चलते नहीं थकती, बस काएं-काएं पहाड़ी कौआ।''

पूर्णी की बातें सुन कर वह और भी हंसता और बादलों के समान गरजते उसके कहकहे सारे घर को नींद से झिंझोड़ डालते । बच्चे बिस्तरों में ही 'पहाड़ी कौआ,' कह कर चिल्लाने लगते और दौड़ कर उसकी कमर से जा लिपटते । पांच बजे का आया हुआ वह लगभग सात बजे हमारे घर से जाता। मां जी उसे डांटते हुए कहतीं, "तुम जो इतनी देर तक हमारे घर में बैठे रहते हो औरों के घर दूध कब पहुंचाते होंगे ?"

वह दूध का खाली डोल उठाता, पूर्णी की ओर मुस्कराती आंखों से देखता और चला जाता, और पूर्णी का मुख अस्त होते हुए सूर्य के समान हो जाता—लाज या क्रोध से यह वही जाने ।

गुजरू लगभग पच्चीस वर्ष का होगा सिर पर छोटे बाल, कानों में मुरकियां छोटी-छोटी चंचल आंखें, "गाढ़े" का कुर्ता पहने वह जाति का ब्राह्मण और देखने में सुन्दर युवक था । हमारी मां जी कभी-कभी विचारती कि पूर्णी का विवाह गुजरू से क्यों न कर दिया जाए, परन्तु पूर्णी न जाने क्यों उसे देख कर ही लाल-पीली होने लगती थी । हमारे भैया और भाभी उसे बहुत ही खिझाते । भैया जब उसे कहते, "पूर्णी, जो तुम्हारा पल्ला गुजरू से बांध दिया जाये तो ?......" तो, पूर्णी मुट्ठियां कस लेती, "तो मैं पहाड़ी कौए की गर्दन पल भर में मरोड डालूं ।"

"हे भगवान, तुम तो राक्षसी हो राक्षसी ।" भैया हंसते और हमारी भाभी चटखारा लेती, "मन ही मन चाहे उस पर मरती हो, परन्तु पाखण्ड तो करने के लिए ही होता है ।"

"मैं उस पर मरूं ? उस पहाड़ी कौए पर ?" पूर्णी भाभी की ओर घूर कर देखती, "भगवान की कसम खा कर कहती हूं उस जैसे को तो मैं अपनी जूती भी न लगने दूं ।"

भाभी ठहाका मारती, "वाह, तुम्हारी जूती के क्या कहने !"

पूर्णी जूती लगने देगी या नहीं यह तो भगवान ही जाने । परन्तु मां जी हमारे पहले सेवक शामदास के अन्तिम शब्द अभी तक न भूली थीं। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए उसने कहा था, "मैं तो जा रहा हूं, मालकिन परन्तु अब इस छोटी बच्ची (पूर्णी) को उसका ही सहारा है । इसका पालन-पोषण और विवाह-शादी का प्रबन्ध आपको ही करना होगा मां जी ।" पूर्णी अब यौवन में थी और मां जी ने मन ही मन पक्का निश्चय कर लिया था कि साल छः महीने में पूर्णी का हाथ गुजरू को सौंप देंगी। परन्तु जब मां जी गुजरू के बारे में पूर्णी की ऐसी बातें सुनतीं तो कभी-कभी उसे डांट भी देतीं, "ऐसे अनाप-शनाप न बकती रहा कर ।"

सायं जब गुजरू हमारे घर दूध देने आता तो कभी-कभी अलगोजे भी ले आता। तब भैया उसे चारपाई पर बैठा कर पहाड़ी लय सुनते। गुजरू बड़े मीठे स्वरों में पहाड़ी लय उभारता और जब अलगोजे बजा-बजा कर थक जाता तब भैया बातचीत शुरू कर देते, "अपने पहाड़ों की कोई बात कहो गुजरू।"

पहाड़ों का नाम सुन गुजरू कुछ उदास हो जाता, "मेरा घर सुद्धमहादेव के पहाड़ों में है। वे हरे-भरे पहाड़ चीड़ और देवदार के झूमते वृक्ष, सर-सब्ज घास, रंग बिरंगे फूल, कल-कल करते नदी नाले और पहाड़ों पर छाई हल्की हल्की धुंध ओह। शाहजी, मेरा घर तो स्वर्ग में है परन्तु क्या कहूं उस स्वर्ग में दरिद्रता बहुत है। हरे भरे पहाड़, ठण्ड के झोंके और झरनों का मीठा पानी तो देते हैं, परन्तु मक्की की रोटियां हमें कम ही प्राप्त होती हैं और मेरे जैसे सैंकड़ों साथी आपके शहरों में जीविका की खोज में वह स्वर्ग त्याग कर चले आते हैं।" यह कह कर गुजरू चुप हो जाता और फिर कोई बातचीत न होती। वह उठता मां जी को प्रणाम करता और अपना खाली डोल उठा कर, रसोई में बैठी पूर्णी को उदास-उदास नजरों से देखता हुआ चला जाता।

एक दिन बड़ी विचित्र बात हुई। गुजरू प्रातः दूध दे गया परन्तु उस रोज किसी ने भी मां जी के किवाड़ न खटखटाये। घर के आंगन में किसी के ठहाके न गूंजे। बच्चे दिन चढ़े तक बिस्तरों में ही दुबके पड़े रहे। धूप चढ़े जब मां जी अपने कमरे से बाहर आईं तो उन्होंने पूर्णी को बड़े आश्चर्य से पूछा, "क्या गुजरू आज दूध देने नहीं आया?"

"आया था, दूध दे गया है, परन्तु कुछ अनमना सा था।"

उस रोज न जाने क्यों पूर्णी का चेहरा भी उतरा सा रहा।

संध्या को जब फिर वह दूध देने आया तो हमने देखा उसकी आंखें बुझी बुझी सी थीं और मुख पर घोर उदासी की कालिमा छाई हुई थी। मां जी ने उससे पूछा, "क्यों गुजरू, राजी तो हो?"

"हां मां जी, राजी हूं" यह कह कर बिना दूसरी बात किये वह चला गया।

"न जाने क्या बात है। कुछ कहता भी तो नहीं" मां जी के साथ हम सब भी बड़े हैरान हो रहे थे।

अगले दिन फिर घर की सांकल बजती किसी ने न सुनी और पूर्णी के अतिरिक्त किसी को भी उसके आने-जाने की खबर न हुई, परन्तु पूर्णी ने मां जी से कहा, "वह बड़ा ही उदास है, मां जी, न जाने क्या बात है। मुझ से पचास रुपयों के लिए कह रहा था।"

"तुम ने क्या कहा?"

"मैंने कहा, मां जी से कहूंगी"

उस रोज जब वह पुनः दूध देने आया तो बरखा हो रही थी और हम सभी दालान में बैठे आग ताप रहे थे। माँ जी ने उसे पास बिठाया और सहानुभूति से पूछा, "क्या आवश्यकता आ पड़ी पैसों की ? कोई बात है तो कहता क्यों नहीं ?"

पूर्णी भी द्वार की आड़ में खड़ी थी।

वह पल भर के लिए चुप रहा और लम्बी सांस ले लेकर कहने लगा, "क्या कहूं, मां जी ! चार रातें हुई मुझे सोये हुए।" हमने अब ध्यान से देखा उसकी आंखें सचमुच सूजी हुई थीं वह कहता गया, "जहां मैं रहता हूं उसके समीप ही एक कोठड़ी है। उसमें एक नानवाई रहता है। बड़ा ही दुष्ट व्यक्ति है, मां जी ! पक्का बदमाश। पिछले दिनों वह कहीं हमारे पहाड़ों में गया था और वहां से एक सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की को लिवा लाया।" गुजरू यह कहते-कहते रुआंसा सा हो गया, "वह नानवाई कहता है उसने वह पहाड़ी लड़की चार सौ रुपये गांठ से खर्च करके लाई है। हर रात नशा पी कर वह उस को निर्दयता से पीटता है जैसे वह लड़की मनुष्य न हो पशु हो, और बेचारी चीखती है, चिल्लाती है और मुझे ऐसे लगता है जैसे मेरे पहाड़ चीख रहे हों लाख-लाख आंसू बहा रहे हों। मैं जब भी उस लड़की को देखता हूं मेरा हृदय जल उठता है। नानवाई दिन को काम पर चला जाता है और भीतर उस लड़की को बन्द करके ताला लगा जाता है और वह लड़की, खिड़की पर बैठी हुई रो-रो कर सूजी हुई आंखों से नीले आकाश को घूरती रहती है।" यह कहते-कहते गुजरू की आंखों में आंसू आ गए और उसकी आवाज भर आई, "कल उस नानवाई ने उसे बहुत पीटा मां जी। उस धूर्त के साथ कल एक और आदमी आया था, वह नानवाई उस आदमी के हाथ उस लड़की को चार सौ रुपये पर बेच रहा था, परन्तु वह ग्राहक केवल तीन सौ रुपये देता था। मां जी, मेरे पहाड़ नीलाम हो रहे हैं और इनकी कीमत आंकी जा रही है, तीन-तीन, चार-चार सौ। मार खाकर वह लड़की चीख रही थी, "ओ ! मेरे बाप मुझे यहां से मुझे ले जा, मैं मर जाऊंगी।" मां जी, मुझ से उसके बैन नहीं सुने जाते। मेरे कानों में आग धू - धू करने लगती है जब मैं उसकी चीखें सुनता हूं शिव जी की सौगन्ध अगर मेरे पास पचास रुपये हों तो मैं उस राक्षस के मुंह पर चार सौ नकद मार कर अपने पहाड़ों को मुक्त करवा लूं और उस निस्सहाय को उसके बापू के पास छोड़ आऊं। उसे उस के हरे-भरे पहाड़ों को सौंप आऊं, जिनकी परछाइयां वह नीले आकाश में ढूंढती रहती है। गुजरू की आंखें बरस रही थीं, "दो वर्ष की कमाई मेरे पास तीन सौ साठ रुपये हैं, कहीं से पचास और मिल जायें !"

"क्या लाभ है उस लड़की को उसके बापू के पास ले जाने का ? वह फिर उसे किसी और नानवाई के हाथ बेच डालेगा।" हमारे भैया ने कहा।

गुजरू ने पल भर भैया की तरफ देखा और फिर एक लम्बी आह भर कर कहने लगा, "आप सच कहते हैं, शाह जी, परन्तु मुझ से वह बैन नहीं सुने जाते।" गुजरू यह कह कर उठा और डोल पकड़ कर जाने लगा, परन्तु मां जी ने उसे ठहरने को कहा। दूसरे कमरे से पचास रुपये ला कर उसकी हथेली पर रख दिये। "मैं शीघ्र ही लौटा दूंगा, मां जी! आप कितनी दयालु हैं।' यह कह कर वह तेज-तेज कदमों से चला गया और पूर्णी कितनी ही देर ड्योढ़ी की ओट में से उसे जाते हुए देखती रही।

दूसरे दिन सायंकाल जब गुजरू दूध देने आया तब उसके साथ पन्द्रह सोलह वर्ष की लड़की भी थी। वह लड़की बड़ी सहमी-सहमी सी दिखाई देती थी। उसका मुख पीला पड़ चुका था उसका लम्बा कुर्ता, सुर्ख 'सुत्थन' पांवों में पहाड़ी जूती और कानों में लटकते काले कुण्डल बतलाते थे कि वह एक भोली-भाली पहाड़ी लड़की है। वह यों डरी-डरी सी थी, जैसे कोई पंछी शिकारी के पिंजरे में दुबक कर बैठा हो।

गुजरू ने मां जी से विनती की, "आपको एक और कष्ट दूंगा, मां जी। इसे सात आठ दिनों के लिए अपने पास रखने की कृपा करें। मेरे पास तो कोई ठिकाना ही नहीं, दस दिन के पश्चात् मुझे तनख्वाह मिल जाएगी तब मैं इसे ले जाकर इसके बापू के पास छोड़ आऊंगा।"

मां जी ने पूर्णी को आवाज दी, "पूर्णी तुम दोनों एक साथ सो रहा करना। इसे अपने कमरे में ले जा।" पहले तो पूर्णी कुछ आना-कानी करने लगी, परन्तु मां जी के दोबारा कहने पर उसे अपने साथ ले गई।

दो दिन ऐसे ही बीत गये। भाभी उस लड़की को अपने पास बिठाती और बड़े दुलार से उसके साथ बातचीत करती, परन्तु अश्रु थे कि उस लड़की की आंखों से बहते ही चले जाते, "मुझे मेरे बापू के पास छोड़ आओ। मैं मर जाऊंगी। मेरे बापू मुझे ले जा।" वह दिन रात यही रट लगाये रहती। मां जी और भाभी उसे आश्वासन देतीं पर उसकी आंखें हर पल बरसती ही रहतीं।

तीसरे दिन हमें यह देख कर बड़ा अचम्भा हुआ कि पूर्णी ने बन्ती (यह उस पहाड़ी लड़की का नाम था) को नहलाया, उसके कपड़े धोए और उसके बाल भी संवारे। हम बड़े हैरान थे कि पूर्णी के माथे की सिलवटें कहां लोप हो गईं जो उस समय लड़की को पहले दिन देखकर उसके माथे पर यों पड़ी थीं कि दो दिन तक न उतर सकीं।

एक दिन जब पूर्णी बन्ती को नहला रही थी तो भाभी ने हंसते हंसते कहा, "अच्छा ही है जो गुजरू इसे ब्याह ले। देखने को भी सुन्दर है और है भी पहाड़ों का।"

पूर्णी ने पल भर भाभी की ओर देखा, "हूं ! ब्याह कर लें" ! और भाभी सारा दिन पूर्णी की उस 'हूँ' का अर्थ समझने में उलझी रही।

दस दिनों के उपरांत गुजरू को जब वेतन मिला तो वह बन्ती को उसके बापू के पास छोड़ने चल दिया। जाने से पहले ड्योढ़ी में पूर्णी और उसके बीच कुछ बातचीत हुई, परन्तु न जाने क्या-क्या बातें हुईं। भाभी और भैया ने इस बारे में पूर्णी से बहुत बार पूछा परन्तु उसने कुछ भी न बतलाया।

गुजरू को गए हुए बारह दिन बीत गए। उसके जाने के दो-चार दिन तक घर में उसकी ही चर्चा होती रही, और उसकी बातों को याद करके भाभी, भैया और बच्चे कितनी-कितनी देर हंसते रहते, पर पूर्णी को न जाने क्या हो गया था, न वह हंसती न वह बोलती। सारा दिन बुझी-बुझी सी रहती। भैया जब सन्ध्या को घर लौटते तब उन से बड़ी उत्सुकता पूछती, "कोई चिट्ठी आई ?" उन बारह दिनों में उसने लगभग बीस बार यही पूछा। तेरहवें दिन गुजरू की चिट्ठी आई। भैया ने पढ़ कर सुनाया कि बन्ती का बापू उनके पहुंचने से चार दिन पहले शराब के नशे में एक पहाड़ी से गिरा और मर गया। अब इस संसार में बन्ती का कोई भी नहीं ! गुजरू ने लिखा था, "मुझे कुछ नहीं सूझता कि मैं क्या करूं। अगर मैं उसे अकेली छोड़ जाऊं तो उसका क्या होगा ? पर ईश्वर अवश्य सहायता करेगा। मैं शीघ्र ही कुछ प्रबन्ध करके लौट रहा हूं। मां जी को चरणवन्दना और पूर्णी को कहना वह चाहे मुझे पहाड़ी कौआ कह कर पुकारती है पर मैं उसे देवी समझता हूं। मुझे आपके घर का हर एक व्यक्ति याद आता है।" भैया ने जब चिट्ठी पढ़ कर सुनाई तो पूर्णी पहले बहुत ही प्रसन्न हुई, परन्तु फिर कुछ उदास सी हो गई और अपने कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। भैया और भाभी ने लाख पुकारा मगर वह कमरे से बाहर न निकली।

शाम की चाय लिए जब पूर्णी बैठक में आई तो हमारी भाभी ने उसे कहा, "तुम्हें क्या हो गया है पूर्णी, तुम तो गुजरू से बहुत घृणा करती थीं। परन्तु हम देख रहे हैं जब से वह गया है तेरा रंग-रूप ही बदल गया है।"

पूर्णी ने क्षण भर भाभी की ओर कुछ ऐसी दृष्टि से देखा जैसे कह रही हो—"मैं बहुत ही झूठी हूं।"

दिन हवा के झोंके की तरह गुजरते गए। गुजरू को गए हुए दो महीने हो गए किन्तु न तो वह स्वयं आया और न उसकी चिट्ठी ही आई। घर में भी अब कभी भूले से ही कोई उसकी बात छेड़ता, परन्तु पूर्णी प्रति दिन भैया से पूछती, "कोई चिट्ठी आई ?"

आखिर कोई ढ़ाई महीनों के पश्चात् गुजरू की चिट्ठी आई। भैया ने पढ़ कर सुनाया, लिखा था, "महाराज ! मैं बड़ी उलझन में फंस गया हूं।

बन्ती को अपने घर तो ले आया, परन्तु गांव वालों ने मेरा नाक में दम कर दिया। मुझे कुछ सूझता नहीं कि मैं क्या करूं क्या न करूं ? अगर मैं बन्ती से पूछता तो वह रो देती, "मेरा कोई नहीं, मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊं ?" यही सोच कर मेरा हृदय भी कांप उठता और तब मैं पल भर के लिए पूर्णी को भूल गया और गांव के पण्डित को बुला कर बन्ती से विवाह कर लिया। पूर्णी मुझे लाख बुरा कहे। आते-आते उसे जो वचन दिया था वह उसे याद कर अवश्य कहेगी कि मैं दगाबाज और कपटी निकला, परन्तु उससे कहियेगा कि वह मुझे क्षमा कर दे पूर्णी मुझे माफ कर देना। मैं सचमुच पहाड़ी कौआ ही हूं अपने पहाड़ों से उड़ कर मैं तुम्हारे बागों में आया और जब तुम्हारे जीवन-वृक्ष पर बैठने के लिए पर तोल ही रहा था तो मेरे पहाड़ों ने मुझे वापस बुला लिया।" आखिर में लिखा था कि वह शीघ्र ही पचास रुपये भेज देगा।

पूर्णी चिट्ठी सुन कर, गुमसुम-सी अपने कमरे में चली गई और अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिए। सारी रात उसके कमरे के द्वार बन्द रहे। मां जी, भैया और भाभी ने उसे लाख पुकारा। परन्तु सब हार गए। उस के कमरे के किवाड़ सारी रात बन्द रहे और अन्दर घोर अन्धेरा छाया रहा।

प्रातः भी मां जी ने सांकल खोलने को बार-बार कहा, लाख आवाजें दीं परन्तु अन्दर से कोई उत्तर न मिला। रात को भी उसने कुछ नहीं खाया था और सुबह भी भूखी रही मां जी द्वार तोड़ने की सोचने लगीं।

हम सब भी यही सोच रहे थे कि दुःख से पागल हो कर कुछ कर न बैठे कि उस के किवाड़ खुले, एक ही रात में उसका रंग-रूप बदल गया था। उसका मुख किसी चिर-रोगी के मुख के समान मुरझा गया था और रो-रोकर उसकी आंखों में लाल डोरे उभर आये थे। वह कमरे से बाहर निकली, मुंडेर पर मां जी ने रात की बासी खिचड़ी फेंकी हुई थी, एक बड़ा सा पहाड़ी कौआ वह खिचड़ी खा रहा था। पूर्णी को न जाने क्या हुआ। उसने एक बड़ा-सा कंकर उठाया और खिचड़ी खाते हुए कौए को दे मारा।

कौआ 'कांएं, कांएं' करता हुआ उड़ गया। [ ]

आवाज़ें

□ वेद राही

अन्धेरे का एक सागर है जिसमें सब कुछ डूब गया है, कुछ भी नजर नहीं आ रहा। चारों ओर मरघट की खामोशी छाई है। ऐसा लगता है कि कभी-इस जगह कोई गांव रहा होगा, अब तो यहां कुछ भी नहीं है। किसी कुत्ते के भौंकने तक कि की आवाज भी सुनाई नहीं दे रही। गली में कोई किसी किस्म के जीवन के लक्षण नहीं। हवा भी भय से जैसे थम गई हो और वृक्षों तथा पत्तों ने अपने सांस रोक लिये हैं।

अचानक जैसे हवा ने खबर के लिए करवट ली और अन्धेरे भी कुछ कानाफूसी करने लग पड़े। कोई संकेत है. दूर से एक आवाज़ आने लगी है। कोई पत्थरों पर छड़ी बजा रहा है। बड़ी धीरे-धीरे से आवाज़ उभरती है। कोई धीरे-धीरे चलता हुआ आ रहा है।

छड़ी की आवाज धीरे-धीरे पास आती जा रही है। इस आवाज के कारण लगता है कि वृक्षों के पत्तों ने अब सांस लेना शुरू कर दिया है। गली में खड़े घर कोठे भी आने वाले को देखने के लिये चेतनशील हो आए हैं।

पांव से टटोलती हुई, छड़ी से रास्ता खोजती हुई एक बुढ़िया घर कोठों के पास आ पहुंची है। इतनी ठंड में भी उसने कमीज के ऊपर मात्र एक चादर ओढ़ रखी है। उसका घर गांव के बाहर एक ऊंचे टीले पर है। वहां से चलते-चलते वह थक गई है। सांस फूल आया है। श्वासों की आवाज, लड़ते हुए दो सांपों की फुंकार की मानिंद सुनाई दे रही है।

वह गली के एक मकान के पास खड़ी हो गई है। अचानक उसकी आवाज़ ने मानों अन्धेरे आकाश को चीर कर रख दिया है।

"अरी धन्नी तुम आ पहुंची " यह कहते ही उसने दरवाजे को अपनी छड़ी से धक्का दिया। "खसमखानिये, मैं तो तेरा ही कुशल-मंगल पूछने आई हूं।

तुम्हारे पास से कुछ छीनने के लिए नहीं। कच्ची-पक्की दो रोटियां आज मैंने स्वयं ही सेक ली थीं। वे निगल आई हूं। पर लगता है कि तुम सो गई हो। अच्छा ठीक है, सोती रहो, मरती रहो, सुबह तुम्हें सताने के लिए आऊंगी।

छड़ी से रास्ता खोजती वह आगे चल पड़ी। आश्चर्य की बात है कि बुढ़िया किन धक्कों को आवाज़ें दे रही थी। किस के साथ बातें कर रही थी। गांव में कौन है उसकी बातों की ओर ध्यान देने वाला। सभी घर खाली हैं और सारे दरवाजे बन्द पड़े हैं।

एक जगह पर उसके पांव कीचड़ से सन गए तो वह बिलबिलाई, "वर्षा भी आज ही आनी थी कमजात। इस निपूती को कोई दूसरा दिन नहीं मिला।' ...फिर कुछ स्वयं ही नम्र हो आई..."चलो, बरस गई तो अच्छा ही हुआ। इतने दिन से खेत सूखे पड़े थे। कुछ तो प्यास बुझी होगी सिरसड़ों की। "अबे, भीमू..." वह फिर एक दरवाजे के आगे जा खड़ी हुई और जोर से किवाड़ पर छड़ी मारी, तुमने अपने खेत तो देख लिए हैं तुम्हारी उसरती मकई कैसी है ?" एक हाथ उसने दरवाजे पर रख दिया है, "तेरा बेड़ा पार हो, तुम शहर से वापिस आ गए हो पर मेरे पास आकर इस मांदी हुई का हाल नहीं पूछा गया। भाई मैं तो हाथ जोड़-जोड़ कर तुम्हारे खेतों की कुशल मनाती रही हूं। मैं इतनी कृतघ्न नहीं कि तुम्हारे अहसान भूल जाऊं। सदा तुम्हारा दिया ही खाती रही हूं। अभी तक तुम्हारे खेतों के दाने खा खाकर जिंदा रही हूं। पर मन में से वह ज़हर कभी नहीं कह सकता कि तुम भी जाते हुए मुझे भूल गए थे। मूर्ख, पाकिस्तानी तुम्हारे सिर ऊपर तो नहीं आ पहुंचे थे। वे तो आज भी यहां तक नहीं पहुंच पाए हैं। पर तुम इतने डरपोक निकले कि भागते हुए मेरा ख्याल तक नहीं आया। मुझे पता है कि अगर मेरी बेटी जीती होती तो तुम मुझे अपनी पीठ पर लाद कर ले जाते। मेरी बेटी लाजो...!" उसने आंखों में आए आँसू अपनी चादर से पोंछ लिए, "अच्छा, कोई बात नहीं, तुम जीते रहो बेटे, बड़ी उम्र हो। यहां रहते हुए मुझे कौन सा तोप का गोला आ लगा है उसी तरह सम्पूर्ण हूं। आराम से बैठी हुई खाती-पीती रही हूं। मेरी गाली गलौज का गुस्सा मत करना मैं तो हूं ही सठियाई हुई। मेरी मानों तो शीघ्र ही अपना ब्याह रचा डालो। मैं तो प्रतीक्षा कर रही हूं कि कहीं ढोलक बजे, गतारें गाएं शहनाईयां सुनाई दें। शोर-शराबा हो। बहुत हो चुका है पाकिस्तानियों का स्यापा। मन विचलित हो आया है।" कहते-कहते वह सचमुच ही विचलित हो आई। उसके लिए वहां खड़ा होना कठिन हो गया। वह आगे चल पड़ी। उसको यह कहने वाला वहां कोई नहीं था कि वह बेमतलब शोर डाल रही है। उसकी बातें कोई नहीं सुन रहा। ये घर पुरानी कब्रों की तरह खाली पड़े हैं। उसे कौन बताए कि जहां कुत्ते, बिल्लियों तक के संकेत नहीं वहां भला कोई मनुष्य कैसे हो सकता है ?

गहरे अन्धेरे में वह अपनी छड़ी से रास्ता बनाती आगे बढ़ती जा रही है। चाहे उसे आंखों से दिखाई नहीं दे रहा पर छड़ी के कारण वह कहीं भी कोई ठोकर नहीं खा रही। उसके पांव और सांसों की आवाज सुनाई दे रही है। सामने कुआं आ गया है और वह जान गई है। वह बायीं ओर एक दरवाजे की ओर मुड़ गई। वह दरवाजा भी दूसरे दरवाजों की तरह कभी का बन्द पड़ा है। छड़ी से उसने उस दरवाजे को धक्का दिया, "तुमने कब से दरवाजा लगाना शुरू कर दिया है इंदरिये! तुम्हारे किवाड़ तो आधी रात को भी मुस्टडों के लिए खुले रहते थे। रांड, तुमने तो शहर जाकर भी खूब नाम कमाया होगा। भला यहां से भागने की जरूरत भी क्या थी। भागते हुए यदि तुम मेरी नजर के सामने पड़तीं तो पूछती, तुम कहां जा रही हो? फौजियों के भय से तुम कहां भाग रही हो। तुम्हारे कलेजे तो ठंड पा देंगे। तुम्हारे सात जन्म की भूख प्यास को शांत कर देंगे। पर तुम्हारी भूख-प्यास गोलों के चार धमाकों से ही चुक गई। चार खसमों को खाकर भी तुम्हें अपने प्राणों का इतना मोह था। मैं समझती थी कि तुम मुझे भी अपने साथ ले जाओगी, कहोगी, कि चलो मासी, मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर ले जाती हूं पर तुमने ऐसे मुसाफिर को पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं। भूल गई कि कितनी बार मैंने तुम्हारे सुहाग गाए थे। ठीक कहते हैं कि सभी सुख के साझेदार होते हैं। मुझे बताओ कि यहां से जाकर तुम्हें क्या मिला है, खज्जल-खराबी ही हुई होगी। तुम से तो मैं ही भली। अपनी जगह बैठी रही। यहां हुआ क्या है? किसी मकान की एक दीवार तक नहीं हिली। मैं तो रोज दीवारों को बजाती रही हूं। तुम ही बताओ तुम्हारे कोठे पर कोई बिजली गिरी है। चलो अब अपना घर सम्भालो। अच्छा किया जो किवाड़ बंद कर लिए हैं। अब तुम्हें पांचवां पति नहीं मिलना निर्लज्ज।'

इंदरी की चौगाठ को जोर से खटखटाकर वह एक तरफ खड़ी हुई कि अचानक चिहुंक उठी, "मरजाने तुम भी आ पहुंचे हो। मेरे आगे से हट जाओ। कलमुंहे! बे पीर जो हुआ सो हुआ, अगर अब रात को तेरे रोने की आवाज़ सुनी तो छड़ी से तुम्हारा सिर दो फाड़ कर दूंगी।"

कोई कुत्ता भी आस-पास नहीं है। पता नहीं किस भरम में पड़ी हुई है यह बुढ़िया, अगर बिन देखे मनुष्यों को आवाजें दे सकती है तो कुत्ते को भी भगा सकती है। अब वह कुएं के मचान पर बैठ गई है। उसे लगा कि कोई रस्सी द्वारा कुएं से पानी निकाल रहा है। वह कान लगाकर सुनने की कोशिश करने लगी जैसे उसने पानी भरने वाली को पहचान लिया हो।

"रानी है? बहू तुमने आजकल कुएं पर आना शुरू कर दिया है?" रानी को बुलाते हुए जैसे उसकी आवाज़ में मिस्री घुल गई हो। "तुम्हारा घरवाला भी कसाई ही निकला। ये फौजी बड़े कठोर होते हैं। बड़ा कड़ा मन होता है इनका। मोहन ने यह भी नहीं सोचा कि अपना घर छोड़कर जो आई

है वह अकेली कैसे रहेगी ? तुम्हारे मन के तो शौक भी अभी पूरे नहीं हुए होंगे। सास तुम्हारी तो चुड़ैल है चुड़ैल ! कलेजा निकाल कर खा लेती है और जो तुम्हारी दो ननदें हैं, वे दोनों पक्की शैतान हैं। मैं तो हर वक्त तुम्हारे ही बारे में सोचती हूं कि कैसे काटती होगी सारा दिन ? तुम मेरे पास आकर बैठा करो। मन के गुबार तुम मेरे पास आकर निकाल लिया करो। मैं तुम्हारे आंसू पोंछ दिया करूंगी।"

कुछ देर तक उसकी आवाज़ कहीं गुम हो गई थी ! ऐसा लगता था कि वह थक गई है, सांस फूल गई है और गला सूख गया है, हाथ पांव ठंडे हो आए हैं। चादर को दोहरा कर उसने अपने ऊपर ओढ़ लिया है और कांपते पांव चल पड़ी है। दाएं हाथ की गली में वह पहुंच चुकी है। गली की आखिरी दीवार का सहारा लिए हुए वह अन्धेरे में ही इधर-उधर देखने लगी है जैसे जांच रही हो कि किस ओर जाना है। वहां से आगे दो रास्ते हैं। वह सामने वाले रास्ते चल पड़ी है और ऊट-पटांग बोलना शुरू कर दिया है। "सारे लोग ज्यादा ही थक गए हैं। आते ही लिहाफ में दुबक गए हैं—पता नहीं शहर जाकर इन्होंने कैसे-कैसे कष्ट भोगे हैं। क्या पता कुछ खाने को भी मिला कि नहीं ? बताइये भला इन कमजातों को किसने कहा था कि भाग जाओ ? अब आ गए हैं ठीक ही हुआ। कितने आराम से सोए हैं अपने घरों में। मैं तो बे मतलब इन्हें तंग करने आई हूं। सुबह भी देखना होगा। यह सामने लम्बड़दार का कोठा आ गया लगता है।...इसे तो अभी देखती हूं ओ लम्बड़दारा .." दरवाजे पर उसने जोर से लाठी मारी और अपनी छाती का पूरा जोर लगाकर जोर से चिल्लाने लगी, "ओ अपनी मां के खसम, किसकी बुक्कल में जा घुसे हो ? अरे बेगैरत जरा बाहर तो आओ, कहां के तुम लम्बड़दार हो ? वोट लेने थे तो हाथ जोड़-जोड़ कर, झुक-झुक कर नहीं थकते थे, और जिस समय हमला हुआ तो सबसे पहले भाग खड़े हुए—लानत है ऐसी लम्बड़दारी पर। सौ जूते मारती हूं तुम्हारे नाम पर। कौन सा मुंह लेकर वापिस आ गए हो ? बेशर्म तुम्हें जरा भी शर्म नहीं आई। कहां है तुम्हारा बाप जो बात-बात पर अपने वंश की बड़ाई करता था ? आज अगर वह होता तो बताती कि उनकी जात क्या है ? मैं गरीब-लाचार बुढ़िया तुम सब पर इतनी भारी हो गई कि मुझे-अकेली ही यहां छोड़कर सभी भाग खड़े हुए। इतना भी नहीं सोचा कि पीछे मैं भय से ही मर जाऊंगी। मुझे तो किसी ने यह भी नहीं बताया कि हमला हो चुका है और पाकिस्तानी आगे बढ़ आए हैं मुझे तो उस समय पता चला जब गांव में और कोई भी नहीं रहा था। गोलों की आवाजों के साथ जानवर भी भाग खड़े हुए थे।"

उसका शरीर कांपने लगा पड़ा था और आंखों में आंसू आ गए थे।

"अकेली रहकर मुझ अभागिन को क्या-क्या नहीं सहन करना पड़ा ?

यह तुम्हें तभी पता चल सकता है जब तुम्हें भी तोप के गोले के सामने अकेला छोड़ दिया जाए। मौत के शिकंजे में तुम जकड़े जाओ तो पता चले । मैं तो तुम्हारा मुंह काला करने के लिए जीवित हूं। अब चुप क्यों बैठे हो बाहर आओ मरदुये-सामने आओ तुम्हारा जूतों से स्वागत करूं ।...अच्छा अब और जोर नहीं देती पर सुबह तुम्हारी गरदन पकड़ कर बाहर घसीट लाऊंगी और सभी को कहूंगी कि इसके मुंह पर थूकें।

बुढ़िया के मुंह से लार टपक रही थी। उसका सारा शरीर कांप रहा था। अब वह गली को छोड़कर बाहर निकल आई है। धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई कांपते पैरों से वह उस ओर चल पड़ी है जिस ओर उसका घर है।

अपने घर के आगे आकर खड़ी हो आई है। आंगन के चारों ओर कांटों की बाड़ दी गई है। कीकर का एक पेड़ भी खड़ा है। अन्धेरे में वह भूत लग रहा है। बुढ़िया के पांव के नीचें कांटे ही कांटे हैं पर उसे उनकी चुभन का अहसास नहीं है।

उसने पीछे मुड़ कर देखा गांव अन्धेरे के सागर में डूब चुका है। पर ऐसा लगता था कि एक-एक घर उसे साफ दिखाई दे रहा है । खाली गलियां, बंद दरवाजे, चुप्प-नचूक दीवारें, मरणासन्न घर-बाहर, सभी कुछ उस अंधेरे में उसे दिखाई दे रहे हैं। अकेले गांव की सारी लाचारी उसके आसपास एकत्रित होना शुरू हो चुकी है। अचानक ही वह डर से कांपने लग पड़ी। वह जोर से चिल्लाना चाहती है पर नहीं। छड़ी एक ओर फेंक कर उसने दोनों हाथों से अपना गला दबाया और भागती हुई अपने घर में जा घुसी। भीतर के किवाड़ बंद कर वह पागलों की तरह कमरे में इधर-उधर भागने लगी । दीवारों से उसका सर बार-बार ठोकर खाकर फूटने लगा। उसके मुंह से चिल्लाहटें उभरने लगीं वह जोर-जोर से रोने और चिल्लाने लग पड़ी। उसके माथे से लहू बहने लगा। बाल उखाड़-उखाड़ कर और अपने वस्त्र फाड़-फाड़ कर वह जख्मी हो आई। आखिर में स्वयं ही एक कोने गिर पड़ी। उसकी चिल्लाहटें बंद हो चुकीं थीं पर होंठ बड़बड़ा रहे थे।

"कब घर वापिस आएंगें घर के लोग ? कहां चले गए हैं ? वे क्यों नहीं आते, क्यों नहीं आते ?" □

अनु० अशोक जेरथ

नया ग्राहक

□ नरसिंह देव जम्वाल

यह मेरी उससे चौथी भेंट थी। शायद अंतिम…।

प्रथम भेंट के संदर्भ में मुझे कभी भी अपनी स्मृति को झकझोरने की आवश्यकता नहीं हुई। यह भेंट साधारण मिलने से कहीं अधिक कुछ विशेष परिस्थितियों में हुई थी। इसलिये उसकी छाया सदा मेरे मन में जीवित रहती थी। बस बात होती और सब कुछ मेरी आंखों के सामने फिर आता। मेरी नौकरी उन दिनों बड़े अस्पताल में थी और वह अवश्य अपने पति के साथ शहर में किसी काम से आई होगी।

क्या काम था। मैंने आज तक इस बेकार से प्रश्न के विषय में जानने का न तो कोई प्रयास किया और न ही मन में कोई स्थान दिया। लोग प्रायः शहर आते-जाते रहते और फिर जब दुर्घटना होने के बाद उसके पति को मेरे ही वार्ड में "बेड" मिला तो भी मेरे लिये वे दोनों आम लोगों से अधिक कुछ न थे। परिस्थितियां बदलते देर नहीं लगी। मैं घर जाने से पहले नाइट ड्यूटी पर आए अपने दूसरे साथी को कुछ मरीजों की देखभाल और डाक्टरों के निर्देशों के अनुसार समय-समय पर दिये जाने वाले इन्जेक्शनों और दवाइयों के बारे में समझा कर निकलने ही वाला था कि वह और प्रकाशो दोनों आ पहुंचीं। प्रकाशो मेरी पत्नी थी।

"जीजा जी ने तो मुझे पहचाना भी नहीं।"

मैंने अभी तक उन्हें एक बार ध्यान से भी नहीं देखा था कि उसकी बात मेरे कानों से टकराई। प्रकाशो कुछ नहीं बोली और हम फिर उसी बेड पर आकर खड़े हो गए जहां उसका पति बेसुध पड़ा था। डाक्टर साहिब के कहने पर पांच मिनट पहले ही उसे मार्फिया का इन्जेक्शन दिया था।

"इनकी हालत कैसी है ?" प्रकाशो ने बहुत देर के बाद पूछा था। अभी कुछ कहा नहीं जा सकता कल पूरे टेस्ट एक्सरे आदि हो जाने के बाद ही पता

चलेगा। चिंता की कोई आवश्यकता नहीं। मैंने यह सब अपने पेशावर ढंग से कहा था नहीं तो आज तक मेरे कानों में उसके स्वर गूंज रहे हैं। नजर उसे घूरती जा रही थी और दिमाग यह सोचने का प्रयास कर रहा था कि यह नई साली कौन हो सकती है। वैसे में उस समय तक इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि यह जो भी हो मेरे ससुराल की ओर से है और इस पहचान के सामने आते ही मेरा फर्ज बनता था कि मैं अपने साथी कम्पाउंडरों को इस मरीज का विशेष ध्यान रखने के लिये कहता उसे सहारा देता और पूछता कि पैसे की या और किसी बात की ज़रूरत हो तो ज़रूर बताए पत्नी से पूर्ण सहानुभूति प्राप्त करने का यह स्वर्ण अवसर मैं क्यों गंवाता ?

अस्पताल से घर पहुंचने तक प्रकाशो ने मुझे उनके बारे में बहुत कुछ बता दिया था पर मेरे मस्तिष्क में दो बातें घूम रहीं थीं। एक यह, कि भले ही मेरी ससुराल गांव हैं पर इन दस सालों में भी वहां के रहने वालों से पहचान अभी अधूरी है और दूसरी यह कि इस मुसीबत में हमारा ध्यान आना डूबते को तिनके का सहारा वाली बात थी नहीं तो करीब का रहना तो दूर की बात थी वह मेरी पत्नी की जाति की भी नहीं थी।

प्रकाशो की सोच मुझ से अलग थी। वह चाहती थी जो भी हो जब तक वे यहां हैं उन्हें किसी भी प्रकार से अजनबियत का एहसास न हो। घर में बेचारी की न तो सास है न मां। जेठ जेठानी हैं वह भी कब के अलग चौका चूल्हा कर चुके हैं। परमात्मा करे बेचारे सुखी स्वस्थ घर लौटें। वह दिन में चार छह बार यह अवश्य कहती और मैं यह सोचता कि वह अपने मायके में अपना मान बढ़ाने की कितनी इच्छुक है।

लगभग डेढ़ महीने के बाद वे सचमुच घर लौट सके। विदा करते समय जो खास बात सामने आई वह उसके गोल मटोल गालों से ढुलकते मोटे-मोटे आंसू ही थे। लाख प्रयत्नों और सहारे देने के बाद भी वह हंस नहीं पाई थी। हमारी दूसरी भेंट लगभग एक वर्ष पश्चात् उसके ससुराल में ही हुई थी। श्रावणी पूर्णिमा को वहां पर एक मेला लगता है। प्रकाशो के बार-बार कहने पर हम वहां आए थे। अचानक भेंट होते ही याद आया कि वह तो इसी गांव में ब्याही गई है। न चाहते हुए भी पत्नी के ज़ोर देने पर हम बच्चों सहित उसके घर गए। हमारी यह भेंट किसी भी प्रकार से अच्छी नहीं कही जा सकती। बात वास्तव में यह हुआ कि उसके अनेक प्रयासों के बात भी उसके अंदर सुलगती कड़वाहट मुझ से छिपी न रह सकी। अस्पताल के वे दिन और रोगी मेरी आंखों के सामने तिर गए और फिर संभवतः मुझ में किसी बड़े समाज सुधारक की आत्मा आ गई थी या फिर उन उपन्यासों का प्रभाव था जो मैं प्रायः पढ़ता रहता था मेरे मुंह से एक ऐसी बात निकली कि सारा वातावरण विषैला हो गया शायद छोटा मुंह बड़ी बात थी। सुनते ही उसने पुराने किस्से खट्टे-लपेटे।

पर बड़ी तीखी बातों से लज्जित करने का प्रयास किया पत्नी ने भी घर लौटने पर मेरी अच्छी तरह से खबर ली और फिर संभवतः यह बात घर पहुंच कर भी समाप्त न होती अगर मैं बच्चों के सो जाने के उपरान्त उसे अपने इस प्रकार कहने के पीछे छिपी सच्चाई से परिचित न कराता।

"तो क्या हुआ ?" सुन कर वह बोली "इसका अर्थ यह तो नहीं कि अगर पति अंगहीन हो जाए तो पत्नी दूसरा विवाह कर ले। यह दुर्घटना अंग के साथ-साथ उसका और भी बहुत कुछ छीन ले गई है प्रकाशो। सिर्फ जीवन बच जाने से ही काम नहीं चलता। गृहस्थी और भी बहुत कुछ चाहती मांगती है।"

"फिर भी" उसने मेरी बात समझे सुने बिना अपनी बात पर ही जोर डाला "परमेश्वर न करे कल को आपके साथ कुछ ऐसा वैसा हो जाए तो मुझे दूसरा विवाह कर लेना चाहिये आपको ऐसा कहते सोचते हुए शर्म आनी चाहिये थी। हमारी बात कुछ और है प्रकाशो ! दस वर्ष हो गए हैं विवाह को। तीन बेटे हैं पर वे जिन्हें विवाह के अभी दो साल भी पूरे नहीं हुए कैसे काटेंगे इतनी लम्बी आयु ? पता नहीं इस तर्क से उसके मन में कोई उथल पुथल हुई या नहीं पर मेरे मन में एक खीझ ज़रूर थी कि सचमुच ही मुझे ऐसा कहने की क्या आवश्यकता थी। जिन उपन्यासों और कृतियों को पढ़ कर मेरे मन में इस प्रकार के विचार आए थे। अभी हमारा समाज, मानना तो दूर की बात इस प्रकार सोच भी नहीं सकता था।

अभी हमारी नारी अपने चारों ओर सुलगते-चमकते अंगार देख कर भी इनसे बाहर निकलने का प्रयास नहीं करना चाहती। नारी ही क्यों मर्द भी उतना ही दोषी है। मेरी नज़रों में उसका पति आ गया जो वास्तविकता जानते हुए भी उसे अपना रास्ता ढूंढ लेने के लिये नहीं कह सका था। एक का स्वार्थ दूसरे को सारी उम्र काटने पर मजबूर कर रहा था।

हमारी तीसरी भेंट लगभग चार वर्ष बाद हुई बड़ी विचित्र थी यह भेंट। अजीब इस बात से कि उसे सामने देखते ही मुझे कुछ शर्म और झिझक महसूस हो रही थी। क्या पता मेरी उस बात की चर्चा करके यहां मेरी ससुराल में मेरा अपमान न कर दे। मैं यहां अपनी साली के विवाह पर आया था और वह भी उन दिनों मायके में ही थी।

"क्या बात है जीजा जी कोई नाराजगी है क्या ?" एक बार तो उसने मुझे नजर बचाते पकड़ लिया था। कोई उत्तर देने के स्थान पर मैं सिर्फ उसकी देखता रहा। उसके चेहरे पर ही नहीं उसकी आंखों की गहराई तक में भी मुझे उस कड़वाहट की उतनी मात्रा नहीं दिखी जितनी पिछली दो मुलाकातों में देख यह महसूस सका था। हो सकता है इस ने जीवन के साथ समझौता

करके स्वयं को परिस्थितियों के अनुरूप ढाल लिया हो मैंने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ। समय आखिर घाव भर ही देता है डोली विदा करने के बाद भी हम एक दिन वहीं रहे थे। उस दिन वह फिर प्रकाशो को मिलने आई थी और जाते-जाते उलाहना दे गई कि पिछले साल मैं उनके गांव जाकर भी न तो उसके घर गया न ही उससे मिला।

"हम गरीबों के कौन आता है" कहते-कहते मुस्कराते हुए वह चली गई। उसके खिले-खिले मुखड़े से मुझे अगर कुछ विचार आया तो बस यही कि हम अमीर भला कैसे हैं आखिर कम्पाउंडरी ही तो है। क्या बनता है इस वेतन से? मेरी ड्यूटी आजकल एंटी मलेरिया यूनिट के साथ है। गांव-गांव और घर-घर जाना पड़ता है पिछले साल भी इसी सिलसिले में उनके गांव गया था। हां इस बार उसका उलाहना याद करके स्वयं उसके घर चला गया और दोपहर वहीं रहा। उसने भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार आवभगत की।

"घर में सब ठीक-ठाक चल रहा है न" बातों ही बातों में मैंने पूछा। सवाल बहुत सुविधापूर्ण था। एक क्षण उसने इधर-उधर खिसकने का प्रयास किया पर अकस्मात उसके मन की जलन उसकी बनावटी हंसी को चीर कर बाहर आ गई। संभवत: वह इसलिये भी पर्दा न रख सकी क्योंकि मैं उसके पति के विषय में सब कुछ जानता था।

मुझे कोई पूछे तो वे दिन बहुत अच्छे थे जब स्त्रियों को जीते जी सुलगने के स्थान पर एक ही बार जला दिया जाता था। उसके उत्तर के अंतिम शब्द उसके मन की पीड़ा को स्पष्ट दिखा रहे थे।

यह ठीक है कि पति के मर जाने पर स्त्री का जीवन दु:खों और कष्टों का ढेर बन के रह जाता है पर उसे जीवित जला देना तो पूरी तरह अन्याय था मैंने कहा।

"अत्याचार ही सही इस प्रकार का बिखराव तो न होता सुन कर महसूस हुआ कि समय का चक्र आगे के स्थान पर एक बार फिर पीछे की ओर मुड़ गया है बहुत पीछे राजा राम मोहन राय के समय से भी पीछे। "आपको इस प्रकार से नहीं सोचना चाहिये" इस बार मैं बड़ा सतर्क था और कोई ऐसी बात न ही करना चाहता था जिससे फिर उस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती "परमेश्वर उन्हें लम्बी आयु दे" उसने बीच में ही रोक दिया और अपनी बात करना आरम्भ कर दिया।

"आप डाक्टर लोग उसी को मुर्दा मानते हो न जिसका श्वास न चले" उसकी तेज़ घूरती नज़रों का मेरे पास कोई उत्तर न था। और न ही इसके बाद वहां रुकने की मुझे हिम्मत हुई।

"नया ग्राहक दिखाई देता है"

गली में उन दो तीन ग्रामीण दुकानों के बीच से निकलते यह शब्द मेरे कानों से टकराए । मैंने एक नज़र सामने बैठे हुक्का गुड़गुड़ाते उस दुकानदार पर डाली । जिसके होठों पर एक अर्थपूर्ण मुस्कराहट बिखरी थी महसूस हुआ कि सड़कों, गाड़ियों और वीडियो टी. वी. का अच्छा नहीं तो बुरा असर स्वीकारने में हमारे गांव भी बहुत मांग कर चुके हैं नहीं तो यह डायलाग…।

यह मलेरिये वाले अभी चार दिन तो इस गांव में रहेंगे ही दूसरे दुकानदार की यह आवाज़ मेरे पिछली ओर से आ रही थी । पर अब मेरी इतनी हिम्मत नहीं थी कि पीछे मुड़ कर देख सकूं मेरी गति और तेज़ हो गई । शब्द इतने दाहक थे कि कान के पर्दों से कलेजे तक एक रेखा सी महसूस हुई और चाहे अभी वहां दो दिन और रुकने का कार्यक्रम था पर मैं बीमारी का बहाना लगा कर घर लौट आया । मन हुआ प्रकाशो से पूछूं । तो तू बात भी नहीं करने देती थी पर अब कह । पर यह सोच कर कि यह भी तो हमारे समाज का ही एक अंग है उन दुकानदारों से कितनी अलग होगी और पता नहीं क्या-क्या कुछ पूछते रहें । मेरे होंठ बन्द ही रहें । □

अनु० : भुवनपति शर्मा

प्लेट फार्म

□ बंधु शर्मा

हिमगिरि एक्सप्रेस के आने में अभी देर थी। पर दफ्तर से घर और फिर घर से रेलवे स्टेशन। काफी लम्बा चक्कर था। इसीलिए सुबह दफ्तर जाते हुए अजय ने मां से कहा था कि वह सायं देर से लौटेगा। फिर उसे ध्यान आया कि मां की दवा समाप्त हो गई है। मां अपनी जरूरतों के बारे में स्वयं तो कभी कहेगी नहीं। उसे ही पूछना पड़ता है। हर बार, और वह कई बार भूल जाता है।

"क्या फर्क पड़ता है? ठीक तो चल रहा है।" मां का यही उत्तर होता। अपनी इच्छाओं का दमन करने वाला मां का वीतरागी स्वभाव उसे भीतर तक कचोट कर रख देता।

उसने ओवर हैड ब्रिज पार किया और प्लेट फार्म नं० दो पर पहुँच गया। कोई भीड़, शोर-ओ-गुल या धक्कम-धक्का नहीं था। हां कुछ सैनिक टुकड़ियों में जगह-जगह बिखरे बैठे थे। पूरा प्लेट-फार्म उनके हंसी-ठहाकों तथा बीड़ी-सिगरेट के छल्लेदार धुएँ से भरा पड़ा था। कुछ लोग, बोरों सन्दूकों और बिस्तरों से धोक लगाए बहुत आराम से नाई से हजामत बनवा रहे थे। काले अथवा अपनी गहरी हरी वर्दी से मिलते-जुलते रंगों वाले चमकीले सन्दूकों पर उजले सफेदे से उनके नाम और पद लिखे हुए थे। नायक सूरम सिंह—राजपूत रैजि०, वीर बहादुर गुरंग—7 गोरखा सूबेदार शिवराम पांडे—8 कुमाऊं, सिपाही प्रताप सिंह सम्याल—डोगरा रेजिमैंट। उसकी निगाहें कितने ही ऐसे नामों और जवानों की छातियों पर चमकते तमगों पर घूम रही थीं। इसके चेहरों पर से अजीब सी चमक और खुशी छलक रही थी। छुट्टियों में अपने-अपने घर जा रहे थे कुछ रेल-कुली सुर्ख-कुर्तों मे इधर-उधर बैठे सुस्ता रहे थे, पिर्चों में चाय उलट-उलट कर पी रहे थे और फौजियों से गप-शप लगा रहे थे। कुछ समय पहले वह जिस ओवर हैड ब्रिज को पार

करके इस प्लेट फार्म पर पहुंचा था, उस पर से एक मजदूर—भारी बिस्तर, अटैची पर अटैची और एक और अटैची, कुछ बैग और छोटा-मोटा सामान उठाए आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा था, मानों मालगाड़ी का एक डिब्बा कट कर आ रहा हो। उसकी गर्दन, पीठ और बाहें सामान के नीचे दबे हुए थे। केवल बेढब मूंछें, और पीली फीकी आंखें दिखाई पड़ रहीं थी। उसने देखा कि वह रेलिंग का सहारा लेकर बहुत मुश्किल से सीढ़ियां उतर रहा है। जब तक वह सीढ़ियां उतर कर उस मस्त जोड़े के पीछे-पीछे उसके सामने से गुज़र नहीं जाता उसका ध्यान उसी ओर लगा रहता है। भार तले उसका शरीर टूट-सा गया है। उसकी टांगें तिड़क रही थीं जलते काठ की मानिंद।

चहल-पहल बढ़ रही है। स्टालों और झल्ली-ठेलों वाले चौकस हो रहे हैं। लगता है कि गाड़ी के आने में अधिक समय नहीं रहा। वह एक कुली को पूछता है कि हिमगिरी कब पहुंच रही है। कुली यह बता कर कि कोई घण्टा भर लेट है, आगे निकलते हुए अपनी खीझ उतारता कहता है, "आजकल गाड़ियों का भी कोई टाइम है—वे बातें गईं अंग्रेजों के साथ बाबू जी।"

वह लम्बे शेड के बाहर आ जाता है। एकान्त में नीम के पेड़ के नीचे चौंतरे पर पड़ी बैंच पर पसर जाता है। उसके आगे काफी खुला स्थान है। चार-पांच रेल पटरियां बिछी हुई हैं। एक रेल इंजन जिस पर उ० रे० लिखा हुआ है शंटिंग कर रहा है। मानो पूरे रेलवे स्टेशन पर पहरा दे रहा हो। पीछे शिवालिक पहाड़ियां। नीचे बहती नदी। नीचे जहां तक दृष्टि जाती है पानी का कूला बढ़ता जा रहा है। सूरज क्षितिज पर टंगा हुआ सुर्ख अंगार बड़ा सा गोला प्रतीत होता था। मानो हरक्लीस ने क्षितिज की ओर चक्का फेंका हो।

सामने पटरी पर दो-तीन युवतियां एक बोगी के नीचे से बिखरा हुआ कोयला चुन रही थीं। कुछ रेल-कर्मचारी उनके गिर्द खड़े अश्लील वाक्यों की कंकड़ी मार कर उन्हें सता रहे थे।

अब पूरा स्टेशन मर्करी लैम्पों और ट्यूब-लाइटों से जगमगा रहा है। कोई सात बजे का टाईम है। हिमगिरी एक्सप्रेस अब आती दिखाई पड़ रही है। अजय जब भी रेलवे स्टेशन आता है या कभी रेल यात्रा करता है तो उसके कानों में कंठे महाराज के तबले का ताल गूंजने लगता है। आकाशवाणी केन्द्र पर से सुना हुआ कुछ वर्ष पूर्व का वह अविस्मरणीय प्रोग्राम साकार हो उठता है। एनाउंसर की घोषणा—"तीन ताल के बाद अब आप सुनेंगे पंडित जी महाराज से रेलचाल......।"

"धिर-धिर किट तक...धिर-धिर किट तक" इस ताल की बौछार करके पंडित जी ने समा बांध दिया था। लगता था सत्तर वर्ष की बूढ़ी बाहों को

बीस वर्ष के जवान हाथ लग गए हों। हर ओर से वाह-वाह, तालियां। वह और प्रतिमा भी अपने गुरु बलबीर सेठ के साथ महफिल में बैठे हुए थे।

गाड़ी आकर एक झटके से रुक गई। एस० सी० कोच के दरवाज़े पर सबसे पहले जिस चेहरे पर नज़र पड़ती है वह प्रतिमा का ही है। बसंती रंग की रेशमी साड़ी में लिपटा हुआ सुन्दर गोरा बदन। नमूदार अंगों से मानों रोशनी की किरणें फूट रही हों। कटे हुए घने-काले बाल। सुर-संगम की स्वागत-समिति के सदस्यों ने आगे बढ़ कर उसे हार और गुलदस्ते पेश किए। उसने भी हाथ जोड़ कर अभिवादन पेश किया। मुस्कानों एवं औपचारिकताओं का यह छोटा सा सिलसिला। प्रतिमा इस शहर में पहली बार संगीत के कार्यक्रम पर आ रही है, वह भी कई अनुरोधों पर। नगर में रंगीन पोस्टर लगे हुए थे। प्रतिमा की फोटो के नीचे नटराज कला मंदिर में होने वाले प्रोग्राम का विवरण छपा हुआ था।

वह अपनी प्रशंसा के दायरे में धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। एक बुक-स्टाल पर खड़े वह सब देख रहा है। एक छोटा-सा हुजूम ओवर हैड ब्रिज पार कर प्लेट फार्म नं० एक से गुज़रता हुआ मेन गेट से बाहर निकल जाता है। उसकी समूची चेतना जो एक बिन्दु पर अटक गई थी लौट आई। उसे कुछ ठंड महसूस होने लगी थी। जाड़ा उतर रहा था। खुले मैदान के कारण हवा ठंडी थी और तेज़ी से चल रही थी। हल्का होने के लिए वह एक यूरिनल में गया तेज़ तेज़ाबी भभूका उसकी नाक में जा घुसा। उसका जी मिचला सा उठा। उसने बेसिन में कुल्ला किया और एक टी स्टाल में जा बैठा।

○○

एक हादसे ने अजय के जीवन का रुख पूरी तरह से बदल रख दिया था। उनकी तिकोण गृहस्थी का एक कोण रक्त-छाप के नीचे आ मिट चुका था। पिता दुर्घटना का शिकार हो गए थे। शाम के वक्त गृहस्थी की साईकल पर दीवान मोटर्स के दफ्तर जा रहे थे। वहां पार्ट-टाईम जॉब करते थे। ग्यारह पहियों के नीचे वह और उसकी साईकल कुचले-मसले गए थे। शव को अग्नि-दाह देने वह दूसरे दिन ही पहुंच सका था। उसके सामने कितनी विकृत और भयंकर लाश थी। एक मेहनती और ईमानदार व्यक्ति की जो कभी उसके पिता थे। घर तक पहुंचने के लिए पैसों का जुगाड़ प्रतिमा ने ही किया था।

दिल्ली में वह अपने एक अमीर अंकल के पास रहती थी, जिसका वसंत बिहार में अपना शानदार बंगला था। वह और प्रतिमा एक संगीत निकेतन में उच्च शिक्षा ग्रहण करते थे। वह होस्टल में रहता था और मुश्किल से गुज़र करता था। महानगर में गुजारा चलाने के लिए उसे संगीत की ट्यूशनें भी करनी पड़तीं। वे दोनों कुशल कलाकार थे और निकेतन के समारोहों में बढ़-

चढ़ कर भाग लेते। गुरु बलबीर द्वारा सिखाई हुई राग ठुमरी की बंदिशें बड़े सुर में गाते। राग यमन में उनके युगल स्वरों में एक उत्सव में गाई हुई प्रसिद्ध बंदिश 'हे री आली पिया बिन'' को सारे हाल में खूब वाह-वाह मिली थी और कई दिनों तक संगीत-प्रेमियों के मनों में बसी रही थी। उसने प्रतिमा के लिए कई धुनें कम्पोज़ की थीं जिन्हें वह आकाशवाणी तथा दूसरे मंचों पर गाती थी। धीरे-धीरे वे दोनों कला के माध्यम से मधुर भावना की डगर पर आगे बढ़ रहे थे।

अंकल प्रतिमा के बढ़ते कदमों पर पूरी तरह से निगाह रखे हुए थे। वे भतीजी के उज्जवल भविष्य के अभिलाषी थे। एक रात अजय और प्रतिमा एक-एक महिफल से देर से घर लौटे। अंकल चिन्तत हो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अजय जब गेट से ही लौटने लगा तो उन्होंने उसे बैठने के लिए नहीं कहा और न ही उसके अभिवादन का ही ठीक से कोई उत्तर दिया था। प्रतिमा को उनका बदला हुआ रुख ठीक नहीं लगा। वह उनके सामने से होकर अपने कमरे की ओर चल पड़ी थी कि उनकी ढीली आवाज़ से उसके पांव जमीन से सट गए। उन्होंने उसे सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठने के लिए इशारा किया था और स्वयं पीठ पीछे मुट्ठियां बांधे इधर-उधर चक्कर लगाने लग पड़े थे, जैसा कि ये आम तौर पर सीरियस मूड में किया करते।

"मैंने तुम्हारे साथ एक बात करनी है प्रतिमा"—बहुत ठहराव था आवाज़ में। उसे मालूम था कि वे क्या बात करना चाहते थे।

"मैं देख रहा हूं कि तुम अजय को कुछ ज्यादा ही इम्पारटेंस दे रही हो। वह चुपचाप सुन रही थी। कुछ रुक कर बोले यदि तुम्हारी संगीत की भाषा में ही कहूं तो यही कहूंगा कि जीवन कोई तानपूरा नहीं है। जिसे बेसुरा होने पर दोबारा सुर में कर लिया जाए। बेसुर-बेलय जीवन संगीत कभी अभिशाप भी बन जाता है—मेरी बात समझती हो न ?'' उन्होंने प्रतिमा की ओर गौर से देखा उनका चेहरा गम्भीर था।

"समझती हूं अंकल"—उसके स्वर में विश्वास था।

वह निराश था। स्नातक जीवन की अनेक यादों स्मृतियों ने उसे घेर रखा था। इन्हीं मधुर-स्मृतियों की गलियों में कई बार उसकी भेंट प्रतिमा से हो जाती। प्रतिमा जो कला के असीम गगन पर सातों सुरों के सतरंगे झूले पर ऊंची-ऊंची हिलोर ले रही थी।

उसे उसी फर्म में नौकरी मिली थी, जहां जाते उसके पिता दुर्घटना का शिकार हुए थे। अपने पिता द्वारा लिखे हुए अधूरे रजिस्टर और फाइलें अब उसकी विरासत में आ रहे थे। उसकी निगाहें और उंगलियां अक्सर इनमें बन्द अक्षरों से टकरा जातीं। उन अभिलेखों से पिता जी का चेहरा झलकता

स्पष्ट दिखाई पड़ता । उसे महसूस होता कि उनके लिखे हुए अक्षर उनकी आंखें हैं, जो उसे घूरती रहती हैं । वह भाग्यशाली था कि उसे दूर-दूर भटकना नहीं पड़ा । फर्म का मैनेजर कई बार उसे इस बात का एहसास दिला चुका था, किन्तु नामालूम क्यों "आभार" और "धन्यवाद" ये दो शब्द उसकी जिह्वा तक आते-आते ही रह जाते । सोचता कि काश वह लोगों को समझा सकता कि उसे कितनी भारी कीमत चुकानी पड़ी थी इस नौकरी के लिए । जिन्दगी की गाड़ी मेन लाईन से कट कर उजाड़ लाईन पर एक सुनसान और बेरौनक स्टेशन पर आ रुकी थी । वह टी-स्टाल से बाहर आ गया है । निगाह क्लॉक टावर की ओर उठी । नौ बज चुके हैं । मां का ध्यान आता है, साथ ही उसकी समाप्त हुई दवा का भी । हाथ पैंट की जेब में जाता है । उसकी उंगलियों में कुछ नोट और प्लेट-फार्म के टिकट आते हैं । टिकट मसल कर कूड़ादान में फेंकता है और स्टेशन से बाहर चला जाता है । बाहर दूर-दूर तक अन्धेरा ही अन्धेरा फैला हुआ है । जैसे-जैसे उसके कदम घर की ओर बढ़ रहे हैं । रोशनी का टापू दूर-दूर होता जा रहा है ।

○○

अजय बाबू आप ? वाह !......शुक्रिया, शुक्रिया । मेरी चिट्ठी मिल चुकी थी न—प्रतिमा की आंखों में खुशी छलक रही थी । कमरे में तानपूरे के सुर गूंज रहे थे । सुकोमल उंगलियां अनायास ही तारों से छेड़-छाड़ कर रहीं थीं । वह आश्चर्य तथा प्रशंसापूर्ण दृष्टि से होटल मानसर के आलीशान कमरे को तथा सुनहले गुलाब का रूप-सौन्दर्य चुराने वाली प्रतिमा को देख रहा था । इक्कीस कमरे में बसे सुरों और खुश्बुओं में खोया सो उसने बड़ी मुश्किल से चेतना बटोरी । आंखों के आगे अपना कमरा घूमने लगा, जहां उसका दम घुटता था । यदि मां की ममता की बेड़ियों ने उसे कसा न होता तो वह सब कुछ छोड़-छाड़ कब का कहीं निकल चुका होता । अनजानी राहों पर—अनजाने लोगों में । खोए हुए सुरों की तलाश में । उसे ध्यान आया कि प्रतिमा ने उसे कुछ पूछा था । शायद अपनी लिखी हुई चिट्ठी के बारे में, जो कल रात घर पहुंचने पर मां ने उसे दी थी । "चिट्ठी नहीं मिलती तो यहां पहुंचता ही कैसे ?" उसे अपना स्वर बहुत औपचारिक लगा ।

पांच बरसों के अंतराल के बाद वे एक-दूसरे के सामने थे । कितना कुछ बदल चुका था । समय का रथ किसने रोका । कोई भी सांझा सेतु उनके मध्य बनी हुई समय की खाई पर टिकने वाला नहीं । वे भिन्न-भिन्न दिशाओं में चलने वाले राही थे, जो संयोग से भी इकट्ठे किसी वृक्ष की छाया में बैठते, विश्राम करते भी तो आखिर उन्हें अपनी-अपनी डगर पकड़नी थी ।

उसे अचानक ध्यान आया कि प्रतिमा की चिट्ठी में उसके नाम के साथ जुड़ा हुआ एक और शब्द था "शाह !" उसके परिचय को नई संज्ञा दे रहा था। प्रतिमा शाह की। प्रतिमा ने ही उसके संशय को मिटाया था। अजय बाबू। कभी कलकत्ता आओ न। आपको अपने हसबैंड से मिलाऊंगी मिस्टर एम० पी० शाह। कलकत्ता हाईकोर्ट के लीडिंग एडवोकेट। वह चुप था। प्रतिमा ने ही बात पूरी की। एक अच्छे कला-मर्मज्ञ, रोज़ एवेन्यू में उनका अपना शानदार चेम्बर है। आइये न कभी—प्लीज़। उसके गले में जैसे शहद घुला हुआ था। आवाज़ में पायल की झनकार थी। वह चाहता था कि बातचीत का यह सिलसिला कभी न रुके। चलता जाए—बढ़ता जाए। प्रतिमा के गले की सुराही से रस छलकता रहे और वह इस मस्ती में डूब कर अपना परिचय भूल जाए। अपनी हार की कड़वाहट धो डाले।

OO

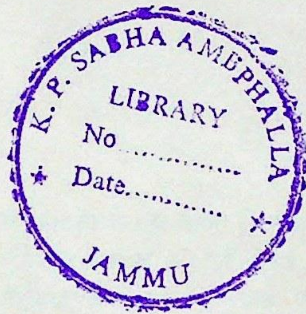
वह नटराज कला मंदिर में बैठा संगीत रस से आनन्दित हो रहा था। राग यमन, कलावती और बसंत एक-एक करके सुरों के पलने में झूल रहे थे। यादों की पगडंडियां कई मोड़ काटती हुई बारीक रेखाओं में बदल रही थीं। ये सभी रेखाएं एक ही चबूतरे तक पहुंचतीं जहां बैठी हुई प्रतिमा शाह अपने रूप-सौंदर्य की धूप में सुर सजा रही थी। तार सप्तक में उसके सुर शहनाई की भांति गूंज रहे थे। उसे अचानक ख्याल आया था कि उसके अपने सुर तार-सप्तक को छूने से पहले ही धुन में अटके रह गए थे।

गाड़ी प्लेट-फार्म पर लग चुकी थी। अभी प्रात: का झुटपुटा था। शिवालिक पहाड़ियों के पीछे से सिन्दूरी पिचकारियां गगन की नीलिमा तथा बादलों के तैरते गालों पर रंग उंडेलती हुई दूर तक पहुंच रही थीं। विशाल सूर्य मुखी पर्वत शिखरों के पीछे से निकलने वाला था। गाड़ी छूटने का समय पास-पास सरक रहा था। भीड़ बढ़ रही थी। जहां एस० सी० कोच लगा हुआ था वह उसके सामने कुछ दूर पड़ी बेंच पर जा बैठा। उसने अपने आगे अखबार उसका ध्यान बार-बार उस पुल की ओर जाता जहां से सीढ़ियों का एक सिलसिला प्लेट फार्म तक लगा हुआ है। उसके दिल की धड़कन तेज हो रही थी। आखिर वह घड़ी आ पहुंची थी। दूसरी दिशा का यात्री अपनी राह पर निकलने वाला था। कुछ लोगों में घिरी हुई प्रतिमा साड़ी की चुन्नटों और कन्धे पर पड़े पल्लू को संभालते-संभालते आ रही थी। इनमें वे लोग भी थे जो दो दिन पहले उसके स्वागत के लिए यहां आए थे। सुन्दर और सीमित सा काफिला है खाते-पीते, बेफिक्र-सा लगने वाले लोगों का। इनमें कुछ महिलाएं भी शामिल हैं। ये सब बतिया रहे हैं—मुस्करा रहे हैं।

प्रतिमा की बादामी आंखें चारों ओर अपनी निगाहों का जाल फेंक रही हैं। लगता है कुछ खोया हुआ तलाश रहीं हैं। जोर की व्हिसल होती है। गाड़ी एक झटके से चल पड़ती है। वह भी झट से आगे बढ़ता है और सुनहरे गुलाबों का गुच्छा प्रतिमा की ओर बढ़ाता है।

गाड़ी द्रुत चाल से आगे बढ़ रही है। उसकी आंखों के सामने अब केवल खाली, वीरान पटरी बिछी हुई है। उससे भी अधिक सूनी और वीरान तो जहन में है कंठे महाराज के तबले की रेलचाल की "घिर-घिर किट तक— घिर घिर किट तक.........।"

अनु० डा० वीणा गुप्ता



कश्मीरी कहानियां



चतुर्थ अध्याय

लगन

□ अमीन कामिल

डाक्टर के चले जाने के बाद आइशा ने एक लम्बा नि:श्वास छोडा, लोहार की फुंकनी को भींच कर ज्यों सारी हवा निकाल ली गई हो । वह उठी और इसी के साथ उसके टखने भी टिक-टिक बज उठे । उदास नजरों से बाकी बीमारों को ताकती हुई वह डिस्पेंसरी से धीरे-धीरे निकलने को हुई । डाक्टर की यह बात, 'बेटी तुझे हिम्मत रखनी चाहिए। यह तपेदिक की बीमारी हर रोगी से ऐसी ही खुदकशी की बातें करवाती है', उसके दिमाग में बार-बार घूम रही थी ।

डिस्पेंसरी के इस सिरे पर दरवाजे के पास ही कम्पाउंडर किसी बीमार के लिए दवाई तैयार कर रहा था। अभी तक वह चुप था। जब उसने देखा कि आइशा निकल रही है, वह दुलारभरी आवाज़ में उससे कहने लगा,

''जो बात तुमने डाक्टर से कही, वह मुझे भी तो कह सकती थीं। कभी-कभी कम्पाउंडर बीमारी को डाक्टर से भी अच्छी तरह समझ लेता है।''

आइशा की उम्र यही कोई बीस-बाईस के आसपास थी। भरी जवानी में उसे अगर रोगों के राजा क्षयरोग ने न ग्रस लिया होता तो समूचे इस्लामाबाद में किसी दूसरी औरत को अपने सामने टिकने न देती, वह इतनी खूबसूरत और मदमस्त थी मगर अब बेचारी के चेहरे पर आंखों के सिवा और कुछ भी न रह गया था ।

घोड़े की जीन उभरी नसों वाले अपने कमज़ोर हाथों से कसते हुए एक साईस किसी बंगाली सैलानी को यह किस्सा मस्त-मगन होकर सुना रहा था। खुद साईस की काया ऊपर से नीचे तक खस्ताहाली में झूल रही थी। उसने दो-तीन बार खंखार कर गले में अटके थूक को बाहर कर दिया और फिर आगे का क़िस्सा सुनाना शुरू कर दिया ।

कम्पाउंडर की बात आइशा के कदमों को काउण्टर के करीब खींच लाई।

"तुम सचमुच मेरा इलाज कर सकोगे ?" कम्पाउंडर की बात में उसे अपने अजाब से छुटकारा पाने की उम्मीद भरी एक छोटी सी किरण फूटती हुई नज़र आई।

"मगर तुम तो अभी डाक्टर से मरने की दवा मांग रही थीं।" कम्पाउडर कांटे में किसी मरीज के लिये दवाई का कोई पाऊडर तोल रहा था।

"वही सही, तुम मेरी मदद करोगे न ?" आइशा चहक उठी। इस रोग ने उसे बुरी तरह पस'पा कर डाला था। जिन्दगी उसके लिए बवाल बन गई थी। सच भी यही है, इस दुनिया में ऐसे इन्सान का मोल ही क्या है जिसकी तन्दरुस्ती छिन चुकी हो। रो-रोकर दिन काटने से तो अच्छा है कि एक बार में ही सब कुछ खत्म हो जाए।

"अच्छा तो अगर तुम्हारी यही मर्जी है तो यही सही। मैं तुम्हें ऐसा मिक्सचर बना कर दूंगा जिससे तुम्हारे सारे दु:ख दर्द दूर हो जाएंगे और इस दुनिया से आज़ाद हो जाओगी।" इस बार कम्पाउडर कुछ संजीदा हो उठा और एक शीशी में लाल रंग का मिक्सचर तैयार करने लगा।

"इस सवाब के लिए खुदाबन्द तुम्हें उम्र-दराज बख्शेगा। पैसे जो भी मांगोगे, दे दूंगी।" आइशा की बादामी-आंखों में पीड़ा की छाया रह-रह कर तैर रही थी।

"पैसे !" कम्पाउंडर हंस दिया, 'पैसे तो ठीक होने के लगते है, मौत के कौन-से पैसे। वह तो मुफ्त है। यह लो दवाई की शीशी और हां, किसी से कहना मत कि मैंने तुम्हें यह दवाई दी है।

"क्यों कहने लगी किसी से ! इतनी एहसान-फरामोश नहीं हूं, दस्तगीर साहब की कसम।" उसने सचमुच दिल से कसम खाई थी।

कम्पाउंडर ने उसकी बादामी आंखों व कलाबतूनी फिरन चोले पर एक दुलार भरी नज़र डाली।

"रात को सोते वक्त बिस्तर में चुपके से सारी शीशी गटक जाना, समझीं।"

शीशी थामते वक्त आइशा के बदन में कंपकंपी की एक तेज़ लहर दौड़ पड़ी और दहशत का एक घना भाव उसके चेहरे पर उभर कर आ गया। 'मौत मुफ्त न होती तो बखुदा कोई भी मरने का नाम न लेता। पैसे लगने चाहिएं थे मौत के, मगर लगते हैं जिन्दगी के वह सोचने लगी।

"कितनी सुन्दर हैं तेरी यह आंखें। काश, यह रोग तुझे न लगा होता।" कम्पाउंडर धीमे से बुदबुदाया।

आइशा के कान जैसे खड़े हो गए। उसके चेहरे पर अत्यल्प क्षणों के लिए ललाई छिटक आई। अगर उसे इस दुनिया से रुखसत न होना होता तो ऐसी

बेहूदा बात करने पर वह कम्पाउंडर की गत बना देती। मगर हो सकता है तब शायद कम्पाउंडर भी ऐसी बात करने की जुर्रत न करता।

वह डिस्पेंसरी से निकल आई। कंपाउण्डर उसे तब तक टकटकी लगाकर देखता रहा जब तक कि वह उस की नजरों से ओझल न हो गई।

कंपाउंडर एक जिन्दादिल नौजवान था। जिन्दादिली उसने जमाने की ठोकरों और मनुष्यों से पाई थी। उसके न आगे कोई था और न पीछे। बालपन से ही कड़ुवाहट-भरी जिन्दगी चखता-जीता आ रहा था। ऐसी जिन्दगी जिसमें किसी की प्यार-भरी नजर बहुत महत्व रखती है।

आइशा के चले जाने के बाद उसने एक गहरी-ठण्डी आह भरी और उस पैमाने को पानी से धोने लगा जिसमें आइशा के लिए उसने अभी-अभी मिक्सच़र बनाया था।

यहां तक बंगाली सैलानी इस किस्से को चुपचाप सुनता रहा। मगर, अब आइशा के प्रभाव के बारे में जानने के लिए वह बेताब हो उठा।

''तो क्या आइशा मर गई या बच गई ?''

इस बार फिर साईस थोड़ी देर के लिए खांस दिया। दम संभाल कर वह आगे कहने लगा :

दूसरे दिन सुबह जब कंपाउंडर किसी रोगी के लिए दवाई तैयार कर रहा था और डाक्टर कहीं निकल गया था, डिस्पेंसरी के अन्दर आइशा घुसी। उसके चेहरे पर मासूम हया की छाया लुक-छिप रही थी। कल तक उसे अपने रोग का दुःख था, पर आज उसके अंग-अंग में उनकी सुन्दर बादामी-आंखों का मदभरा एहसास हिलौरें ले रहा था। रोगी को निबटा कर कंपाउंडर ने नजर आइशा पर डाली।

''तो वह दवा तुमने पी नहीं ? दिल माना न होगा, क्यों ?' कंपाउण्डर के होठों पर हल्की मुस्कान बिखर आई, 'दरअसल, जान सबको प्यारी होती है न।''

''तो कैसे नहीं'' आइशा की पलकें हद से ज्यादा बार-बार झपक रही थीं।

''तो फिर उसने असर क्यों नहीं किया ?'' यह बात कंपाउण्डर ने न आइशा से कही और न खुद से। उसका यह कथन सम्भवतः उस खाली शीशी की तरफ था जो आइशा अपने साथ लाई थी।

''उसे पीकर तो पहले सारा बदन टूटने-सा लगा। फिर आंखों में एक अजीब तरह की खुमारी भर गई। मैंने सोचा हो गई खत्म। मगर, सुबह देखा कि मैं तो जिन्दा हूं।'' ''आइशा की आंखें तेज़ी के साथ झपक रही थी।''

कंपाउंडर के होठों पर इस बार एक अर्थभरी मुस्कराहट दौड़ी । उसने आइशा के बादामी नयनों पर हसरत भरी नज़र डाली ।

"लगता है दवाई की मिकदार कम रही है तभी उसने असर नहीं किया है । खैर, चिन्ता की कोई बात नहीं है । अब के उससे भी ज्यादा ताकतवर डोज़ बनाकर दूंगा" कहते-कहते कंपाउंडर दवाई के पैमाने को धोने लगा ।

आइशा को अब अपनी ज़िन्दगी मे मोह हो गया था । अब वह मरना नहीं चाहती थी । अपनी बादामी आंखों के लिए वह ज़िन्दा रहना जरूरी समझने लगी थी जिनकी तारीफ कल कंपाउण्डर ने, उसके सामने, छुप-छुप कर की थी । इस घातक रोग से छुटकारा पाकर वह वापस स्वस्थ हो जाना चाहती थी ताकि वह यह जान पाए कि उसकी आंखों की तारीफ करने में कंपाउण्डर का क्या मतलब था ।

"न-न, अब दवाई नहीं चाहिए" वह कुछ शर्मायी, "देखें, खुदा क्या करता है । शायद बिना दवाई के ही ठीक हो जाऊं ।"

यह सुनकर हंसी में बदलती अपनी मुस्कराहट कंपाउंडर रोक न सका । दरअसल, उसने उसे गहरी नींद लाने का मिक्चर दिया था, कुछ और नहीं ।

"अच्छा, तुम्हारी अगर यही इच्छा है तो यही सही । मैं भी नहीं चाहता कि तुम म···र···, कम-से-कम तुम्हारी यह बादामी आंखें···।"

एक-आध क्षण के लिए कंपाउंडर की नज़रें आइशा की नज़रों में घुल गईं । 'शर्म-ओ-हया से आइशा की पलकें झुक गईं । बदन का सारा खून चेहरे की तरफ भागा । तभी गालों पर लाली नमूदार हो गई । वह तेज़ कदमों से डिस्पेंसरी से बाहर निकल आई । कंपाउंडर ने आवाज़ दी, "सुनो, कहां रहती हो, यह तुमने बताया नहीं ।"

"कावज मुहल्ला में" आइशा ने पीछे मुड़कर जवाब दिया, "यों तो रहने वाली इस्लामाबाद की हूं, मगर दो-तीन महीनों से इलाज करवाने के लिए यहां इस शहर में अपनी मां के साथ रह रही हूं ।"

यह सच था कि आइशा की बादामी आंखों के साथ कंपाउंडर की दिलचस्पी बहुत ज्यादा बढ़ गई थी । मगर, यह भी उतना ही सच था कि इस दिलचस्पी के पीछे कंपाउडर का मुद्दआ आइशा का ध्यान इस घातक रोग से हटाना था क्योंकि आइशा के दिल में अपने रोग की भयकरता का एहसास हद से ज्यादा घर कर गया था । वह जवान थी, शायद इसीलिए ।

बंगाली सैलानी का चेहरा खुशी से खिल उठा ।

"तो क्या आइशा ठीक हो गई ?"

"बाबू जी"···साईस पहले हंस दिया फिर किन्हीं विचारों में डूब कर कहने लगा ।

"उस दिन के बाद आइशा और कंपाउंडर का मेल-मिलाप बढ़ता ही गया। दोनों दर्दमन्द थे। एक को जमाने ने दुत्कारा था और दूसरे को रोग ने। दोनों सहारा चाहते थे। दोनों दुनिया के गम भूलकर निशात और शालीमार के बागों में, डल झील की रोमानी फिज़ाओं में, चांदनी रातों में अपनी ज़िन्दगी के हसीन क्षण बिताने लगे। इस दौरान दोनों एक-दूसरे के बहुत करीब आ गये। कंपाउंडर आइशा पर अपनी तनख्वाह का अच्छा-खासा हिस्सा खर्च करने लगा।

ज़िन्दगी के इस हसीन खेल को कंपाउंडर पूरे चार महीने तक खेलता रहा। इस दौरान आइशा को रोग का गम एक तरह से भूल सा गया और इसके बदले उसमें अपनी जवानी का अहसास उछलने लगा। उसके रुखसारों पर अब हल्की लाली स्थायी रूप से उभर आई की और वजन भी उसका कुछ बढ़ गया था। मगर, एक दिन वह अचानक अपनी मां के साथ इस्लामाबाद चल गई और फिर उसके बाद कभी लौटकर न आई।"

"अजीब बात है। अच्छा तो उस कंपाउंडर का क्या हुआ ?" बंगाली सैलानी की कुछ-कुछ गम्भीर हो उठा।

साईस की खांसी फिर उभर आई। फरागत मिलते ही उसने कहना शुरू किया,

"कंपाउंडर ने सचमुच ही आइशा के बादामी नयनों में उस शराब को हिलोर लेते देखा था दिन के नशे में खोकर वह अपनी कड़ुवाहट भरी जिन्दगी को भुला देना चाहता था। मगर, इस मदमस्त आंखों की शराब को लूटने के लिए उसे बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ी—इस काम में आइशा की बीमारी उसे लग गई थी।"

आखरी वाक्य ने बंगाली सैलानी से कुछ देर के लिए बोलने की ताकत छीन ली। बड़ी मुश्किल से शब्दों को समेटते हुए वह बोला।

"ओह, बड़ा ही अफसोसनाक वाकया हुआ है। कंपाउंडर फिर कहां गया, कुछ पता है तुम्हें ?"

साईस संजीदा हो गया।

"बाबू जी, मेहनतपेशा लोगों के लिए उनकी तंदरुस्ती ही सब कुछ होती है। बीमारों को इस दुनिया में कौन पूछता है। सुनते हैं, बाद में उसकी नौकरी भी चली गई और उसे सड़क पर जाना पड़ा। बाबू जी, जिन्दा रहने के लिए उसे कुछ-न-कुछ तो करना था। इस लिए 'सरकारी-टूरिस्ट-घुड़शाला' में साईस की नौकरी कर ली। हो सकता है इस समय वह बाहर से आये किसी सैलानी की खिदमत में लगा हो।..." □

मनुष्य और मरीचिका

□ अली मुहम्मद लोन

आज यह दीवारें फिर मुझे जैसे काटने को दौड़ रही हैं। यह साफ सुथरा कमरा आज फिर व्याकुल सा लग रहा है। उफ् ! आज सर्दी भी कुछ ज्यादा ही है। परन्तु वह कैसे ? अभी तो बहार की ऋतु है। फिर यह सर्दी कैसी ? नहीं-नहीं सर्दी तो नहीं है। यह तो मेरे अपने हृदय में जमा हुआ कोहरा है जो मेरी नसों में पिघल कर मुझे कंपकपा रहा है। मेरे हृदय में जमा हुआ यह कोहरा कहीं मुझे ले डूबेगा। ओह ! दस बजने को हैं, और मैंने अभी तक शेव भी नहीं की। मेरी कमीज भी कितनी मैली हो गई है, परन्तु फिर भी मैं इसे पहने हुए हूँ। जूतों पर धूल की एक और परत जम गई है, पर मैं इन्हें साफ नहीं करता। लगता है आज फिर देर हो जाएगी और साहब फिर क्रोधित हो जाएंगे। परन्तु साहब को क्रोध की ज्वाला भी मेरे हृदय में जमे इस कोहरे को पिघला कर बाहर नहीं निकाल सकती। चालीस वर्ष···ठंडे और यख़ चालीस वर्ष···सुनसान और अकेले चालीस वर्ष···मानों मैं मनुष्य नहीं कोई सिल पाषाण हूँ। मुझे कोई भी जीवन नहीं दे सकता। फिर मैंने स्वप्न क्यों देखा। इस राख में वो चिंगारी कहां से उत्पन्न हुई जिस ने मुझे उसकी ओर प्रेरित किया।

''नमस्ते जी''

नमस्ते मत कहो दुलारी, हेलो अमर कहो। मैं तुम्हारे सदके जाऊं। यदि कहो तो मैं अपना रक्त भी तुम्हें पिला सकता हूँ। तुम्हें ज्ञात नहीं कि तुम्हारे यहां आने से मेरे जीवन में कितनी उथल पुथल हुई है। इस सुनसान और बेढंगे दफ्तर को तो मानों नया जीवन मिल गया हो। तुम्हारे जहां प्रवेश करने से ···एक श्वास लेने से···एक मधुर शब्द बोलने के कारण चारों ओर एक रौनक सी आ जाती है।

और जो शाप इस दफ्तर को मिला था उसका अन्त हो गया है। देखो, दुलारी, इन मुशटन्डे क्लर्कों की ओर देखो···देख रही हो न···यह जो दलीप

कट हेयर स्टाईल और 'ज्यूल थीफ' कैप पहने बैठे हैं···यह जो तंग मोरी की पतलून और जरकन पहने आज तुम्हारे सामने बैठे हैं। मालूम है तुम्हें यह कितने गंदे और बेढंगे रहते थे यह सभी कितने बेदिल और रोगी से लगते थे। देखो बनो मत ! जैसे तुम्हें अनुभव न हुआ हो कि तुम्हारे यहां आने के पश्चात् इन सब में इतना परिवर्तन कैसे आ गया। चलो इनको जाने दो, मुझे ही देखो ! मैं स्वयं इस दफ्तर की गन्दगी का आदी था मैं भी इन लोगों की भांति ही गन्दा और बेढंगा बना दफ्तर आया करता था। साथ-साथ दिन की बढ़ी हुई शेव, पिता जी के समय का बन्द गलमे का कोट और उस कोट के नीचे कई-कई महीने एक ही कमीज और बनियान पहने रखता था। मैं कभी भी अपना जूता पालिश नहीं करता था। टोपी पर तो मैल चमकती थी। परन्तु अब मेरी ओर देखो। अतः मैं रोज शेव बनाता हूँ। बन्द गलमे का कोट छोड़ अब मैं भी खुले गलमे का कोट पहने हुए हूँ। असली टेरीवूल का··पचास रुपये मीटर। मैंने अब टेरीलीन "ब्रिग्स" शर्ट पहनी हुई है। मेरे जूते देखो। इन्होंने बहुत दुखी किया है, उंगलियां एक दूसरे पर चढ़ी हुई हैं और पांव बहुत दुख रहे हैं, परन्तु चारा क्या है ? दुलारी तुमने यहाँ मार्क किया था कि मैं सबसे पहले दफ्तर पहुँचता हूँ। सच मानो तो इस रहमान शेख़ का तो मैंने नाक में दम कर रखा है। एक-एक चीज़ अपने सामने साफ करवाता हूँ, विशेषकर तुम्हारे टेबुल, कुर्सी, टाईप मशीन, इनकमिंग और आऊट गोइंग ट्रे है। तुमने यह भी मार्क किया था कि मैं सबसे बाद में दफ्तर से निकलता हूँ पर सम्भवतः तुम्हें इस बात का पता नहीं कि तुम्हारे यहां आने से पहले इस दफ्तर का बुरा हाल था प्रतिदिन हमारे एक्सपलेन्शन निकला करते थे।

बेइज्जती होती थी। कोई भी चीज ढंग से नहीं रखी जाती, कोई भी रेफरेन्स आसानी से हाथ नहीं आता···परन्तु अब हमारा दफ्तर हमारे सभी दफ्तरों से 'मोस्ट इफीशेंट' माना जाता है, क्योंकि तुम्हारे कारण सभी कुछ बदल गया, इसलिए हम पहले तुम्हारे और बाद में साहब के बहुत आभारी हैं जिन्होंने तुम्हें इस दफ्तर में लाया।

"मैंने कहा जी, मेरी एक प्रार्थना है" अरे प्रार्थना क्यों, आज्ञा करो। कहो तो जीवन तुम पर वार दूं। मेरा जी चाहता है कि तुम्हें हृदय में बिठाकर तुमसे प्रेम करूं। देखो मेरे सामने तुम्हारी "पर्सनल फाईल' पड़ी है कल ही मैंने इसका कवर बदलवाया है और अपने हाथों से सब्जेक्ट वाले कालम में लिखा है, 'पर्सनल फाईल, ऑफ कुमारी दुलारी राज़दान, टाईपिस्ट मालूम नहीं क्यों मुझे तुम्हारा नाम लाल अक्षरों में लिखना बहुत ही भाया, देखो इस फाईल में अभी तक कुछ ही कागज फाईल किये गये हैं।

तुम्हारा एपाईन्टमेंट आर्डर, तुम्हारी ज्वानिंग रिपोर्ट मैट्रिक का सर्टिफिकेट एक आध और मामूली कागज। यह तुम्हारा लीव एकाउंट है। सिर्फ

एक केस कैजुअल लीव, पन्द्रह दिनों में सिर्फ एक लीव। माई गाड! तुम कितनी पंक्चुअल हो दुलारी! यदि न भी होती तो भी कोई बात नहीं थी मैंने तुम्हारी छुट्टियां चढ़ानी होतीं तो एक भी न चढ़ाता, रहा तुम्हारा टाईप का काम वह मैं स्वयं कर देता, परन्तु तुमने हमारी यह आकांक्षा भी पूरी न होने दी। मुझे वह दिन भली भांति याद है। प्रात: से ही मेरी आंख फड़क रही थी और मुझे विश्वास था कि कुछ न कुछ होने वाला है। इधर तुम्हारी टाईपराईटर खराब पड़ी थी और उधर कुछ अरजन्ट चिट्ठियां टाईप के लिये आन पहुंचीं। फ़ारूक साहब के बच्चों को 'बर्न हाल' से घर पहुँचाने के लिए गया हुआ था उसने शेष दो मशीनें ताले के अन्दर रखी थीं।

तुमने पेचकस लेकर टाईप खोलने की कोशिश की, मैंने तुम्हें कहा भी कि मैं ठीक कर देता हूँ पर तुम न मानीं। परिणाम यह निकला कि घबराहट में पेचकस तुम्हारे हाथ को लग गया और तुम्हारे हाथ से रक्त की धारा छूट पड़ी। मुझे ऐसे प्रतीत हुआ जैसे मेरा हाथ घायल हुआ हो। मेरे हृदय में एक शूल सा चुभ गया मैं अपनी कुर्सी से उठा तो मुझे ऐसे लगा जैसे मेरे दिमाग में मधुमक्खियां गुनगुना रही हो। मैंने तुम्हारे दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया और मक्खन से कहा कि वो "सम्मत इनटरनैशनल डिसपेन्सरी' से डिटोल या आयोडीन ले आये। न जाने मुझे क्या हो रहा था। मक्खन के जाने के पश्चात् मुझे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे मेरे सारे शरीर पर चींटियां रेंग रही हों। मैंने तुम्हारे घायल हाथ को अपने अधरों के बीच दबा लिया और तुम्हारा गर्म-गर्म नमकीन रक्त चूसने लगा।

तुमने अपनी ओर से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयास किया था परन्तु मैंने नहीं छोड़ा। मेरे दिमाग में मधु-मक्खियों की गुनगुनाहट और तीव्र हो रही थी और मेरे शरीर पर मानों करोड़ चींटियां तेज़ तेज़ भाग रही थीं। मेरे सिर से पांव तक एक बिजली सी दौड़ गई। यह सब कुछ केवल मेरे साथ ही नहीं हो रहा था तुम्हारा सारा शरीर भी कांप रहा था। मैं लम्बे-लम्बे श्वास ले रहा था। मुझे लगा जैसे मेरी जीभ मेरे कंठ के अन्दर धंस रही है। आज तक मैंने तुम्हारे कमल के पत्ते समान पतले और कोमल हाथों को दूर से ही निहारा था, परन्तु उस समय तुम्हारा एक हाथ मेरे हाथ में था और दूसरा घायल हाथ मेरे अधरों के बीच। मैंने उस समय कामना की थी कि समय की गति यहीं रुक जाए और मैं मृत्यु तक तुम्हारा हाथ इसी प्रकार अधरों के बीच दबाएं रखूं। यदि यमराज के पास समय हो तो वो मुझे उसी समय उसी स्थिति में उठा ले जाए ताकि मेरी आत्मा भटकती न रहे और मुझे मुक्ति मिल जाए। परन्तु बेड़ा गर्क हो इस मक्खन का वह उसी समय आयोडीन और पट्टी लेकर आ मरा और सब कुछ समाप्त हो गया। तुम्हें ज्ञात होगा उसके पश्चात् मैंने मक्खन के एक के बाद एक चार 'एक्पलेनेशन्स' निकाले थे क्योंकि उसने उस समय आकर मेरी

तपस्या, मेरी पूजा भंग की थी। हो सकता है मैं उसे क्षमा कर देता, परन्तु उस साले ने स्वयं आयोडीन तुम्हारे हाथ पर लगाई और तुम्हारा सारा शरीर पीड़ा से कांप उठा। जिस समय तुम्हारे मुख से 'सि-सी' की ध्वनि निकली तब मक्खन ने बिना सोचे समझे तुम्हें अपने गले से लगा लिया और तुम भी भीगी बिल्ली की भांति मौन उसके गले से चिपकी रहीं, उस साले ने यह भी नहीं सोचा, कि यह अधिकार उसको किसने दिया। दफ्तर का सुपरिन्टेंडेंट मैं था और अपने कर्मचारियों का दुख-सुख देखना मेरा कर्त्तव्य—नहीं था दुलारी ?

"मेरी एक प्रार्थना है।"

फिर वही शब्द ? प्रार्थना !···प्रार्थना मैंने तुम्हें पहले भी कई बार कहा है दुलारी कि प्रार्थना का शब्द प्रयोग न किया करो। तुम्हारा काम तो यह है कि मेरे कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ जाओ और टेबुल पर अपनी दोनों कुहनियां जमा कर अपने दोनों हाथों के बीच अपना सुन्दर मुखडा टिका कर हंसते-हंसते मेरी आंखों में आंखें डालकर बैठी रहो। अपने होंठों को अधखुला रखना ताकि तुम्हारे मोती जैसे दांत दिखते रहें। कमल के फूल जैसा मुखड़ा···अनार की कली जैसे अधर···बर्फ से भी श्वेत दांतों की लड़ी···हाय ! हो सकता है तुम्हें याद न रहा हो। परन्तु मुझे भली भांति याद है कि मैंने एक दिन तुम्हें अपना एक पर्सनल लैटर बन्द करने के लिए दिया था, गोंद की बोतल मैंने जान बूझकर पहले ही अपने दराज में छुपा के रख दी थीं तुमने वह लिफाफा अपनी ज़ुबान से गीला करके बन्द किया था। मैंने वह लैटर तुमसे लेकर तुम्हें जाने को कहा और तुम्हारे जाने के पश्चात् मैंने लिफाफे का वह भाग जिस पर तुमने अभी-अभी अपनी ज़ुबान का स्पर्श किया था मैंने अपने होठों के बीच दबा लिया लिफाफे का यह भाग अभी भी गीला था और तुम्हारी ज़ुबान की हल्की सी गर्मी अभी भी अनुभव की जा सकती थी। तुम्हारे श्वासों की सुगन्ध अब भी इस पर लेटी हुई थी। मैंने लिफाफा खोला और जिधर-जिधर तुमने दहकते कोयले की भांति अपनी जिह्वा का स्पर्श किया था उधर मैं कितनी देर तक उस भाग को चाटता रहा। इस बार फिर मुझे अपने कानों में मधुमक्खियों की गुनगुनाहट सुनाई दी एक बार फिर मुझे अपने शरीर पर चींटियों का रेंगना महसूस हुआ और एक बार फिर मेरी जिह्वा सिकुड़ने लगी। कितनी देर तक मैं लिफाफे के उस भाग को चाटता ही रहा जब तक कि मुझे लिफाफे पर लगी गोंद की हल्की-हल्की मिठास मेरे मुख के अन्दर फैल न गई। नहीं-नहीं यह गोंद की मिठास नहीं थी यह तो तुम्हारे अनारी अधरों का शर्बत था तुम्हारी लाल जिह्वा का लाल सोमरस। तुम्हारी सुगन्धित श्वासों का अमृत जिसने मुझे बेसुध कर दिया। मेरी आत्मा एक बार फिर शान्त हुई मैं अपनी आत्मा को और शान्त करता परन्तु उसी समय टेलीफोन की घण्टी बजी मैंने टेलीफोन उठाया। लिफाफा अभी भी मेरे होठों से चिपका हुआ था और मैं अभी भी उसे चूम-चाट रहा था दूसरी ओर

साहब ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था···"अमरनाथ । यू ब्लडी फूल, वट आर यू डुइंग, आर यू इन यूअर सैन्सस ?"

हूँ सैन्सस का साला ! इसको भी अभी मरना था । वास्तव में मेरी खुशी जैसे इसे भाती ही नहीं । नहीं तो यह कौन-सा इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट एक्सचेंज का दफ्तर है जो रिंग हुई नहीं कि प्रलय आई नहीं ।

"मैंने कहा जी आप सुन रहे हैं न, मुझे प्रार्थना करनी थी ।"

"अरे प्रार्थना करने वाले तो हम है दुलारी, तुम्हारे सेवक । यह मैंने क्या कह दिया "प्रार्थना करने वाले हम" नहीं, नहीं प्रार्थना करने वाला मैं । मैं तुम्हारा हूं और तुम मेरी हो । तुम मेरी देवी और मैं तुम्हारा दास ! तुम मेरी मालकिन और मैं तुम्हारा सेवक । आज्ञा करो......करो न दुलारी यह हिरणी की भांति एक टक क्या देख रही हो ? कहो, तुम्हें क्या चाहिए ? देखो बीस वर्ष नौकरी करके मैंने बहुत कुछ जुटाया है । अकेली जान थी कितना खा सकता था । वास्तव में यह सब कुछ तुम्हारे ही भाग्य में था डाकखाने में भी दस-बीस हज़ार तो होंगे ही । जी. पी. फंड में भी यही कोई दस हजार होंगे । दो इन्श्योरेंस पालसियां चल रही हैं एक पांच हजार की । एक पालिसी दो साल बाद मेच्योर होने वाली है । बताओ तुम्हें क्या चाहिए मांग लो, अपने में साहस पैदा करो दुलारी..... अच्छा मेरी आंखों में झांक कर देखो. इनमें भी तुम्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा ? भली-भांति देखो । अच्छा, लो मैं यह चश्मा ऊपर उठा लेता हूं । कुछ नजर आया! जी करता है तुम्हें जोर से गले लगा लूं और रोकर कहूं "दुलारी मेरी बनोगी ?" मैं चालीस वर्ष का हूं, इस बात से मत घबराना । तुम स्वयं भी तो तेईस वर्ष की हो । मैंने तुम्हारा मैट्रिक का सर्टीफिकेट देखा है । दस वर्ष का अन्तर भी कोई अन्तर है ? माना कि तुम नई-खिली कली हो......मैं भी तो कोई बूढ़ा नहीं हूं । मेरा एक भी बाल सफेद नहीं है । अभी तो मेरे बाल भंवरे की भांति काले हैं । काश ! मैं तुमको सब कुछ बता सकता । मुझ में स्वयं भी साहस नहीं और मैं तुम्हें कह रहा हूं कि अपने में साहस पैदा करो और कह दो कि तुम्हें क्या चाहिए । मैंने अपने हृदय में वेदनाएं अपनी सारी आकाक्षांएं, सारी कामनाएं अपने नेत्रों में एकत्रित की हैं । इनमें झांक कर देखो यह तुम्हें मेरे हृदय का सारा हाल सुना देंगी । मैं सच कह रहा हूं, डरो नहीं मैं एक कुंवारे से भी अधिक प्रेम तुम्हें दूंगा, किसी भी वस्तु का अभाव नहीं रहने दूंगा । शायद तुम सोच रही होंगी कि एक इतनी आयु वाले व्यक्ति को इस प्रकार मुझ पर सौदाई होना क्या शोभा देता है । क्यों शोभा नहीं देता दुलारी ? क्या इस व्यक्ति की छाती के अन्दर स्नेह और प्रेम भरा धड़कता हृदय नहीं हैं । तुम पूरे छः घण्टे मेरे सामने रहती हो फिर भी मैं सौदाई न बनूं । जिस समय तुम्हारा अस्तित्व..... सुन्दर और यौवन

भरा अस्तित्व......प्रेम से भरा अस्तित्व चौबीस घंटे मेरे झुलसे हुए जीवन को चिनार की भांति छाया प्रदान करेगा, उस समय मृत यौवन में नई गरिमा और उत्साह उत्पन्न हो जाएगा..... देखो दुलारी इसमें हर्ज ही क्या है ? मैं अकेला हूं । न कोई आगे न पीछे । तुम एक गरीब बाप की बेटी हो । तुम्हारे लिए विवाह करना उतना ही कठिन हो जाएगा जितना मेरे लिये हुआ था । सब यही कहते थे कि इस अकेले भूत को कौन बेटी देगा । मेरा बाप नानवाई की दुकान करता था । उसने दो विवाह किये थे वह कोई पढ़ा लिखा भी नहीं था । मैं तो ग्रेजूएट हूं । सरकारी कर्मचारी हूं और शीघ्र ही अण्डर सैक्रेटरी बनने वाला हूं । परन्तु इस जाति का क्या करूं जिसने मुझे खराब करके इस आयु को पहुंचाया । समय निकलता गया और मेरी आयु में एक-एक वर्ष की बढ़ोत्तरी होती गई । तुम्हें तेइसवां वर्ष चल रहा है और सात नवम्बर को चौबीसवां आरम्भ हो जाएगा । तुम कहां से इतना दहेज इकट्ठा करोगी जिसको देकर कोई अच्छा वर तुम्हें मिलेगा ? इस लिए क्या यह ठीक नहीं रहेगा कि तुम मेरी बन जाओ और मैं तुम्हारा । मैं यह सब कुछ केवल सोचता ही क्यों हूं ? तुम्हें यह सब कुछ खुल कर बताने का साहस क्यों नहीं होता । तुम्हारे सामने मैं बेज़ुबान क्यों बन जाता हूं ? मैं तुम्हें कह क्यों नहीं पाता कि दुलारी मेरी बन जाओ । मेरी कितनी सुन्दर कोठी बिना जीवों के भूत महल बनी हुई है । तुम्हारे बिना मेरी सारी आकाक्षाएं, सारे चाव छिन्न-भिन्न हो गए हैं । इसीलिए तो कहता हूं कि दुलारी मेरी मान लो । यह दिन फिर नहीं आएंगे । कहीं ईश्वर तुम्हारी दशा भी मेरी जैसी न कर दे । मेरी बात मान लो दुलारी, मान भी लो न ।''

''क्या बात है आप क्यों...''...''मारे गए । शायद इसने सब कुछ सुन लिया है । सुन लिया है तो ठीक ही हुआ भय वाली डुबकी तो लग गई । अब तो मैं तैर सकता हूं । मैंने दुलारी ज़ोर से कहा होगा और इसने सुन लिया होगा । परन्तु इसने क्या उत्तर दिया ? कहो-कहो दुलारी तुमने क्या कहा ? अच्छा तो मैं ही बताता हूं । परन्तु किस मुंह से कहूं, तुम लज्जाओगी तो नहीं, तुम नाराज तो नहीं होगी न तुम नौकरी छोड़ कर चली तो न जाओगी ? तुम कहीं मुझे इसी नरक में छोड़ कर चली तो न जाओगी जिससे बाहर निकलने के लिए मैं तड़प रहा हूं । दुलारी यदि तुम कहो तो मैं तुम पर अपनी जान वार सकता हूं, परन्तु तुम मुझसे रूठना नहीं । तुम नौकरी नहीं छोड़ना, मुझे अकेले छोड़ कर चली मत जाना । नहीं दुलारी यह सब न करना..... यह सब न करना । अच्छा ! मैं साहस बटोर कर सब कुछ तुम्हें बताता हूं । हां, सब कुछ दुलारी ! मेरी बनोगी ? बताओ बनोगी न मेरी ? आज तक मैं अपना......प्रेम तुमसे छुपाता रहा कभी भी अपने हृदय की दशा खोलकर नहीं बताई । परन्तु दुलारी क्या तुम्हें मेरी आंखों से भी कभी कुछ प्रतीत नहीं हुआ ? मेरी आंखों से कभी

मेरे हृदय में झांका तो होता। तो सब कुछ तुम्हें बताता। हे मेरे भगवान मुझे शक्ति दो कि मैं इस परीक्षा में सफल हो जाऊं मुझे शक्ति दो।

परन्तु मैं डर क्यों रहा हूं ? दलीप कुमार में साहस था जो उसने सायरा-बानों को अपनी नाव में उतार लिया था। मिसेज कैनेडी उस वृद्ध यूनानी के साथ चली गई थी। फिर मैं तुम्हें क्यों नहीं कह पा रहा।

''मैंने कहा जी मुझे परसों से एक महीने की छुट्टी चाहिए ।''

छुट्टी ! एक महीने की छुट्टी ? भला इसे क्या करनी है ? दुलारी ! क्या बात है ? सुख तो है न ? पिता जी स्वस्थ तो हैं न ? तुम इस प्रकार लजा क्यों रही हो ? 'क्या बात है ? तुम तो एक दिन के लिये भी छुट्टी नही लेतीं। पूरा एक महीना छुट्टी की क्या आवश्यकता पड़ गई ?

''मेरा विवाह है''

विवाह ? दुलारी ! तुम्हारा विवाह ! यह तुमने क्या कर दिया दुलारी ? तुमने भी मुझे धोखा दिया ? परन्तु नहीं, तुमने धोखा नहीं दिया मैं ही तुम्हें कभी समझ न सका मुझे ही कभी साहस न हुआ।

''क्या बात है जी आप मेरी ओर इस प्रकार क्यों देख रहे हैं क्या मैं कोई पाप कर रही हूं ।''

''पाप तो नहीं कर रही। कहो तो तुम पर अपनी जान वार दूं। परन्तु मुझे तो तुमने मार ही डाला। फिर मुझे अकेला छोड़ कर जा रही हो। मैं अब इस अकेले जीवन का क्या करूं ? बताओ दुलारी ? बताती क्यों नहीं दुलारी ? यदि इस प्रकार छोड़ना ही था तो मेरे हृदय में तुमने स्थान ही क्यों बनाया था। मेरे हृदय की वेदनाओं को छेड़ा ही क्यों था। मेरी मरी हुई आकांक्षाओं को जगाया ही क्यों था। मैं तो अब भी कहता हूं कि तुम मेरी बन जाओ।''

''आप उनसे परिचित हैं......वो......भी यहां ही काम करते हैं।''

हाय ! यह बात कह कर और गहरा घाव लगा दिया है तुमने दुलारी ! वह कौन हो सकता है जो इसी दफ्तर में काम करता है और तुम उसकी बनने वाली हो। कहीं तुमने साहब को अपनी नाव में तो नहीं बिठा लिया ?

''नहीं, नहीं तो वह कैसे हो सकता है। वह दूसरा विवाह कैसे कर सकता है। फिर वह कौन भाग्यशाली है ? हू इज दैट बास्टर......टैल मी, हू इज दैट बास्टर...साला कहीं का। मुझे पता भी नहीं लगने दिया और अपना काम कर गया। अब सब्र करना गलती है। अब मुझे चाहिए कि सब कुछ इसे सुना दूं। हां, मैं सुनाऊंगा, मैं अवश्य सुनाऊंगा।''

''......अपने स्टोरकीपर।'' कौन, वो लंगड़ा मक्खन जिसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं। तुम बावली तो नहीं हो गई हो दुलारी। नहीं-नहीं यह नहीं

हो सकता मैं ऐसा कभी भी नहीं होने दूंगा। मैं क्या मर गया हूं जो तुम उस मुए से विवाह रचा रही हो। चाहे तुम गरीब हो कुछ नहीं ला सकती...तुम जैसी कैसी भी हो तुम मुझे स्वीकार हो। तुम्हें स्वीकार है ? क्या कहती हो दुलारी ? रहा यह लंगडा मक्खन...साला कहीं का...बास्टर...रास्कल कल ही साहब से कह कर मैं उसे नौकरी से निकलवा दूंगा। दर-दर झक मारने पर भी कहीं उसका विवाह न हो सका और अब तो मेरे आड़े आया...तुम्हारे आड़े आया साला लंगड़ा। मैं भी कहूँ उस दिन उसने तुम्हें गले लगाने का साहस कैसे किया।"

"नहीं, मक्खन मेरे आड़े नहीं आया और न ही दुलारी के। यह तो यौवन ...यौवन को बांहें पसारे बुला रहा था। गरम रक्त,—फड़कते पट्ठे, आयु, का एक ऐसा भाग जो धूप की भांति चमकता है। इसके सामने मेरा प्रेम, मेरा स्नेह और मेरी घृणा भी दम तोड़ गई उस समय मैंने अनुभव किया जैसे मेरे बाल सफेद होने लगे हों। दिन ढलने लगा हो और संध्या की परछाइयां मेरी ओर बढ़ रही हों। हृदय ठंडा पड़ गया हो। मेरी नसों में जैसे गरम-गरम रक्त की जगह बर्फ से भी ठंडा जल दौड़ रहा हो। आज हर ओर अन्धकार है। फिर यदि आज देर भी हो जाए तो क्या होगा। साहब यदि क्रोधित भी हो जाए तो क्या होगा ? दफ्तर का यदि सत्यानास भी हो जाए तो क्या होगा ? अब कोई फर्क नहीं पड़ने वाला······कोई फर्क नहीं पड़ने वाला।"

□ अनु० : नरेन्द्र शर्मा

बंदी

□ बन्सी निर्दोष

संसार चन्द की गुलामी का यह आखरी दिन था चालीस साल की गुलामी के बाद आज वह मुक्त होने जा रहा था। इन चालीस वर्षों में संसार चन्द की हालत उस तरबूज की सी हो गई थी, जिसके अन्दर का गूदा लोग खा चुके हों और बाहर रह गया हो सिर्फ एक खोल और इसी ऊपरी खोल को बचाने के लिए संसार चन्द लगातार जतन किये जा रहा था और उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था जब उसके लड़के को कुन्दन जी को नौकरी मिल जाएगी, और वह इस गुलामी से मुक्त हो जाएगा। उसकी यह इच्छा पूरी हो गई थी बी. ए. पास कर लेने के पश्चात तीन साल तक बेरोजगार रहने के बाद कुन्दन जी को एकाऊंटेण्ट जर्नल के दफ्तर में कलर्की मिल गई थी। संसार चन्द की खुशी आपे से बाहर हो गई थी। उसे लग रहा था जैसे उसके बेटे को कोई ऊंची पदवी प्राप्त हुई थी।

जिस दिन कुन्दन जी को नौकरी का आर्डर मिला उसी दिन शाम को संसार चन्द ने अपने सेठ के हाथ में एक महीने का नोटिस थमाया और बड़े गर्व से कहा कि महीना पूरा हो जाने बाद मैं नौकरी त्याग रहा हूं। ईश्वर ने मेरी सुन ली। बेटे को नौकरी मिल गई पूरे छः सौ रुपये मिलेंगे। छः सौ उसके और मेरी पेन्शन के दो सौ, हुए। पूरे आठ सौ हमारा गुजारा हो जायेगा। संसार चन्द के घर में कुल चार सदस्य थे। वे खुद उसकी पत्नी और दो लड़के। उसने अपनी बड़ी लड़की का सरकारी मुलाज़िम से रिटायर होने से पहले विवाह कर दिया था और रिटायर होने के बाद अब वह हमारे साथ दुकान पर नौकरी कर रहा था, नौकरी को संसार चन्द नौकरी नहीं बल्कि गुलामी कहता था इसलिए नहीं कि प्राईवेट मुलाजिमत से वह खुश नहीं था बल्कि वह अपने पूरे जीवन को इसी नज़र से देखता था। एक बंधे हुए आदमी की नज़र से उसका कहना था कि मैं तो पैदायशी गुलाम हूं मेरा तो सारा जीवन गुलामी में ही निकल गया, पहले सरकार की गुलामी करता था अब सेठ की करता हूं।

तब भी दिन रात कोल्हू के बैल की तरह आंखें मूंदे दिन-दिन काट रहा था आज भी काट रहा हूं। प्रतीक्षा इसी दिन की थी कि कुन्दन जी काम पर लग जायेगा तो उसकी गुलामी भी समाप्त हो जायेगी। इसलिए वह खड़ा था कि आज उसके बेटे को जिन्दगी में पहली बार वेतन मिलने वाला था और उसके साथ ही वह सेठ साहूकार के बन्धन से मुक्त हो जायेगा। छः सौ रुपये कम नहीं होते। यू तो संसार चन्द को खुद पेन्शन के अलावा दुकान से चार सौ रुपये मिलते थे और इस तरह कुल मिलाकर उसकी मासिक तनख्वाह छः सौ रुपये हो जाते थे। मगर आज बेटे को छः सौ रुपये। यह उसे एक बहुत बड़ी रकम लग रही थी। मानों छः सौ, छः लाख हों। एक मामूली रकम भी एक गरीब आदमी की नज़र में कभी-कभी कितनी बड़ी बन जाती है मुझे खुद इसका पहले कोई अन्दाज़ा नहीं था हालांकि मेरी तनख्वाह भी इतनी ही थी यही कोई चार सौ रुपये के लगभग मगर मैं जैसे चाहता वैसे अपनी इच्छानुसार खर्चा करता। घर-गृहस्थी का खर्च मेरे पिता जी और बड़े भाई साहब चलाते थे। फिर अभी तक अविवाहित ही था। इसलिए घर की कोई जिम्मेदारी भी मेरे ऊपर न थी। मुझ में और संसार चन्द में कोई अन्तर नहीं था। उसने एक लड़की से शादी कर दी थी और अभाव होने पर भी ठीक ठाक दहेज दिया था व लड़के वालों की हर फरमाइश पूरी कर दी थी। लड़की के सुख के लिए थोड़ा बहुत कर्ज़ भी लेना पड़ा था। यह बात अब सात साल पुरानी हो गई थी। इन सात सालों में रिटायर होने के बाद उसने एक दूसरी प्रकार की गुलामी स्वीकार की। घर चलाने के लिए दो लड़कों को शिक्षा देने के लिए उसने सेठ जी की गुलामी स्वीकार कर ली थी। इधर अब दो लड़कों में से एक की बड़ी दौड़ धूप के पश्चात नौकरी लगी थी। पिछले सात सालों में संसारचन्द इसी दिन की प्रतीक्षा में था और शायद सात हज़ार बार मुझसे बोला था।

'मजीद भाई, कुन्दन जी के नौकरी पर लगते ही मैं इस गुलामी से आज़ाद हो जाऊंगा। बहुत कर ली चाकरी। इसमें कोई शक नहीं कि संसार-चन्द अपने काम में काफी होशियार था। हमारे सेठ जी को आज तक किसी एकाउण्टेंट से नहीं बनी थी। मगर संसारचन्द उसका भरोसे का आदमी बन गया था। सेठ के सभी कामों से वह वाकिफ हो गया था। सेठ जी जो भी करने को कहते थे वह संसारचन्द चुपचाप कर देता था। वह कहता था "मैं तो आदेश का पालन करता हूं।" पाप-पुण्य का भागीदार तो सेठ खुद है। हम तो भई चाकर हैं, गुलाम हैं। हम तो गरीबी की और गुलामी की ही सज़ा भुगत रहे हैं। बाकी इन्कम टेक्स, सेल्ज़ टेक्स वालों के सामने हम सेठ जी के लिए ही गिड़गिड़ाते हैं। इन सब के फल स्वरूप ही सात तारीख को चार सौ रुपए मेहनताना लेते हैं यह नैतिक व बौद्धिक दासता नहीं तो क्या है? महीने

की सात तारीख को तनख्वाह के रुपए आंखों के साथ लगा कर व उन्हें चूमकर संसारचन्द अक्सर दोहराता है।

"मजीद भाई खुदा से मांगता हूं कि मेरे कुन्दन जी की नौकरी जल्दी लग जाए। तब मैं हाथ पैर पसार कर खूब आराम करूंगा। रिटायर होने के बाद भी मैं बेफिक्री की नींद कभी नहीं सोया। पहले यह सोचता था दफ्तर देर न हो जाए, अफसर नाराज़ न हो जाए। अब यह फिक्र लगी रहती है दुकान खुल न गई हो सेठ जी निकल न पड़े हों दुकान की ओर।

संसारचन्द की तमाम परेशानियों का आज अन्तिम दिन था। आज उसका बेटा वेतन घर लाने वाला था और आज उस नोटिस का भी आखिरी दिन था जो संसारचन्द ने सेठ जी को एक महीना पहले उसकी नौकरी से मुक्त होने के लिए दिया था। मुझे यकीन था संसारचन्द आज चैन की नींद सोयेगा। अब यह किसी का चाकर नहीं किसी का गुलाम नहीं। सरकारी नौकरी का मुझे खुद तो कोई अनुभव नहीं था मगर संसार चन्द की इस बात से मैं सहमत था कि प्राईवेट नौकरी गुलामी से भी बदतर होती है। समान अधिकारों की बात की कल्पना मात्र नहीं की जा सकती। कर्मचारी इंसान नहीं होता बल्कि मालिक का खरीदा हुआ गुलाम होता है। उस की सात पीढ़ियां उसकी गुलाम होती हैं। बल्कि मालिक सेठ की नज़र में नौकरी करने वाले इंसान के मुहल्ले तक के लोग भी उसके नौकर होते हैं। उसे न जाने क्या-क्या सुनना पड़ता है। "अबे, तू किस मुहल्ले का है" ग्राहक को पटाने की जांच तक नहीं। खायेगा मन भर काम करेगा न रत्ती भर। तू तो किसी काम का नहीं है न लीपने का न पोतने का।

वैसे हमारा मालिक सेठ इतना निर्दय नहीं था कि उठते-बैठते मुलाजिमों को फटकारता रहता। वह बहुत जगह घूमा था। वह दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों में साल में एक दो बार आया जाया करता था। इन जगहों से उसके ग्राहक भी उसकी दुकान पर आते थे। यों तो वह खुले दिमाग का आदमी था, फिर भी वह जागीरदाराना माहौल से निकला हुआ एक ऐसा इंसान था जो अपने दुकान के मुलाजिमों से अपने घर का छोटा मोटा काम करने में बड़ी खुशी महसूस करता था। राशन मंगवाना, नल या बिजली की फीस जमा करवाना गैस वगैरा मंगवाना बच्चों को स्कूल लाना ले जाना मालिक सेठ के ऐसे छोटे-छोटे काम करते मुझे बड़ी लज्जा आती थी। मृत्यु समान पीड़ा होती थी मगर दूसरे मुलाजिम खुशी-खुशी यह काम कर लेते थे। संसार चन्द उन में शामिल था। उसका कहना था सेठ की नौकरी की है तो उसके घर का छोटा मोटा काम करने में झिझक कैसी? ओखली में सिर दिया तो मूसलों से डर कैसा। दुकान पर यदि कोई काम नहीं तो खाली बैठे तनख्वाह थोड़ी न देगा सेठ! कोई न कोई बेगार तो जरूर लेगा।

यह जाड़े के दिन थे। ठण्ड की वजह से मौसम भारी-भारी और आकाश लटका हुआ था। बर्फ और पानी से सड़कें जल-थल हो गई थीं। बाजारों में लोगों का आना जाना कम हो गया था। वह खाली जेबों की तरह लग रहे थे। न कोई न सूरत दिखाई दे रही थी न आदमी-आदमी में कोई फर्क दिखाई दे रहा था। कनटोप लगाये पट्टू के कोट पहने और फिरन लगाये सारी सूरतें थकी-थकी सी लग रही थीं बिल्कुल संसारचन्द की तरह। मगर आज यह बात नहीं थी। आज संसार चन्द के चेहरे पर रौनक थी। क्योंकि कुन्दन जी को नौकरी पर लगे हुए एक महीना हो गया था और उसके कुन्दन जी की नौकरी के आईने में संसार चन्द के अपने सुखी-सुदृढ़ बुढ़ापे के जाने कितने मीठे सपने आज पूरे होने वाले थे। दुकान पर यह उसका आखरी दिन था। मेरा मन भारी हो चला था। पिछले कुछ वर्षों से संसारचन्द के साथ काम करते-करते एक अजीब सा लगाव हो गया था। मगर मैं साथ ही खुश था, सोचा, चलो अच्छा ही हुआ बेचारा इस गुलामी से मुक्त हो गया। कहां तक घिसता इस बूढ़े शरीर को। चालीस साल से घिस रहा है अब इसे आराम की जरूरत है। बेटा आराम न देगा तो कौन देगा। सभी मुलाजमों से मिल-मिलाने के बाद संसार-चन्द ने विदाई ली और कुछ जल्दी ही घर के लिए चल पड़ा।

संसार चन्द जी बीच-बीच में दर्शन देते रहना यह कहता हुआ मैं दुकान से निकल कर उसके साथ सड़क तक आ गया। जिन्दगी का क्या भरोसा जाने कब मिलना होगा। मैं उस रात देर तक सोचता रहा मगर अगले दिन ही देखा कि ससारचन्द दुकान क बाहर खड़ा मौजूद है हम सब हैरान हो गये। दुकान खोल उसने मालिक सेठ से कहा "सेठ जी मैं अपना नोटिस वापिस लेना चाहता हूं। सारे कर्मचारी यह सुनकर खड़े हो गये। सेठ को ज्यादा खुशी हुई मगर मुझे नहीं। संसारचन्द को अलग ले जाकर मैंने पूछा क्या बात है। आप तो अब बेफिक्री की नींद सोने वाले थे, गुलामी से मुक्त होने वाले थे तो क्या कुन्दन जी को तनख्वाह नहीं मिली?

"हां मिली" ससारचन्द के गले से मुश्किल से आवाज़ निकली।

तो फिर?

"भाई वेतन उसे जरूर मिला था परन्तु सारे का सारा घर लाने से पहले ही खर्च कर डाला था। अपने लिए सूट-बूट और दूसरा सामान ले आया। ठीक कह रहा था कुन्दन जी अपने स्वार्थ के कारण मैं असलियत को समझ नहीं पा रहा था।" संसारचन्द की बात सुनकर मैं बड़ी व्यग्रता से यह बात जानना चाहता था, कि संसार चन्द की बददिली का असली कारण क्या था। मैंने पूछा, आखिर क्या कहा कुन्दन जी ने?

"भाई, कहने लगा मेरे भी तो बहुत से खर्चे हैं मुझे भी तो अपनी

दुनियादारी निभानी है। जैसे आज तक घर चल रहा था वैसे अब क्यों नहीं चल सकता ?

संसार चन्द की यह बात सुनकर मैं उसे आँखें न मिला सका। अपने आप से मुझे शर्मिन्दगी का अहसास हुआ। मुझे सूझा ही नहीं कि मैं क्या पूछूं और क्या जवाब दूं। गुलामी के इस चक्र से निकलना कितना मुश्किल है। सात तारीख को हमें दुकान से तनख्वाह मिलती थी। सात तारीख को जैसे ही मुझे वेतन मिला, मैंने सारे रुपये पहली बार अपने पिता जी के सामने रख दिये पिता जी को विश्वास ही नहीं हुआ। उन्हें मेरी तनख्वाह देख कर जैसे दौरा सा पड़ गया था। □

रोती ज़िन्दगी के हंसते क्षण

□ गुलाम नबी शाकिर

आज वह फिर उदास थी। पति की यह बेरुखी उसके जीवन में ज़हर घोल रही थी। अपनी सुन्दरता, अपनी जवानी, पति के सामने सज-संवर कर जाना। यह सब उसे खोटे सिक्के की भांति बेकार और बेमतलब लग रहा था। सुबह जब उसका पति दफ्तर जाने लगा तो वह न जाने क्या सोच बन-संवर कर उसके सामने गई थी। शायद उसे अपने पति की आंखों में प्यार की वह ताज़गी नज़र आ जाए जिसे देखने के लिए वह वर्षों से तड़प रही थी। कल रात उस पर प्रेम की ऐसी बरसात हुई थी जिसने पिछले समस्त सन्देह मिटाकर उसके हृदय-सरोवर में एक नया कंवल खिला दिया था। पति ने उसे अपने पास खींचा था और सीने से लगाकर उस पर प्यार बरसाया था। क्षण भर के लिए उसे वह सब भूल गया जो वह सोचा करती थी। अपना पति, संसार की सभी नियामतों से प्यारा और अमोल है। मेरे मन में यों ही बुरे विचार आते थे। यह सोचकर वह मन-ही-मन मुस्करा दी थी।

रात भर वह मीठी नींद सोयी थी और सुबह ? सुबह फिर वही जो अब तक होता चला आ रहा था। बुरे विचारों का काला नाग फिर उसे डसने लगा। वह यह सोचने पर दुबारा मजबूर हो गई कि उसकी सुन्दरता, उसकी जवानी सब व्यर्थ है। पर नहीं, वह यह सब स्वीकार करने को अभी तैयार न थी। कल रात की एक-एक बात अभी तक उसकी आखों के सामने घूम रही थी। अभी उन बातों को हुए कुछ ही घंटे तो बीते थे। आज सवेरे से जब नींद से जागी तो उनका चेहरा एक विचित्र प्रकार का रोष लिये हुए था। माथे पर उभरे बल देखते ही हलीमा का दिल फिर डूबने लगा। जब उसके दफ्तर जाने का समय हुआ तो वह खुद चाय और आमलेट लेकर उसके पास गई। मगर उसका पति आज भी रोज़ की तरह दस बातों के उत्तर में एक बात करता। हलीमा को साफ लगा कि वह अपनी भावनाओं तथा स्वयं अपने को भी उससे छिपा रहा है।

वह यह सोचती ही रही और उसका पति उठ कर दफ्तर जाने को हुआ। हलीमा ने सुना, वह कह रहा था—मुझे आज दौरे पर जाना है। शायद आज न लौट सकूं। दिन भर उसके होंठों पर यह शब्द बार-बार आता रहा—'स्वार्थी', 'स्वार्थी'। ऐसा आज उसके साथ पहली बार नहीं हुआ था बल्कि पिछले चार साल से उसके साथ यही होता आ रहा था। उसका जीवन एक सहरा बन गया था जहां न विश्राम करने को छांव थी और न प्यास बुझाने को पानी ही। हाँ, कभी-कभी न जाने कौन सी दिशा से बादल का एक टुकड़ा आकर वर्षा कर जाता। मगर वह भी अधूरी और ना मुकम्मल। उसके बाद वही बेअन्त सहरा, वही रूखापन और नीरसता। जीवन की यह कठोर वास्तविकता हलीमा के लिए बवाल बन गई जिसका हल ढूंढने के लिए वह छटपटाने लगी, घुटने लगी।

वह पति की जेबों की तलाशी लेती यह सोचकर कि शायद किसी मुंहजली की तस्वीर हाथ लगे या कोई दूसरा सुराग मिले। पर उसे अभी कुछ न मिला। फिर भी उसके मन में रह-रह कर कोई-न-कोई सन्देह उभर कर आ जाता। कुछ ही दिन पहले उसका पति और मकबूल कमरे में बैठे बातें कर रहे थे। कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया गया था। हलीमा से न रहा गया। वह दरवाज़े के साथ कान लगाकर उन दोनों की बातें सुनने लगी। जो टूटे-फूटे शब्द वह सुन पाई उनसे उसके तन-बदन में आग लग गई। ओह! कितना ज़लील और खतरनाक है यह मकबूल। उसने तो यह बहुत पहले महसूस कर लिया था। शादी के बाद जब वह पहली बार मकबूल से मिली थी तो उसकी आंखों में एक अजीब तरह की भूख नज़र आई थी उसे। उसने कई बार पति से कहना भी चाहा था कि मकबूल अच्छा आदमी नहीं है। मगर पति ने सच्ची दोस्ती का वास्ता दिलाकर उसका मुंह हमेशा के लिए बन्द कर दिया था। दो-दो बच्चों वाली पड़ोस की उस परित्यक्ता बानो के बारे में वे दोनों ऐसी छिछली और ओछी बातें कर सकते हैं, उसने कभी न सोचा था।

उसने एक झटके से प्यालों समेत ट्रे उठा ली। ट्रे को ताक में रखने के लिए जब वह रसोई-घर की ओर बढ़ी तो दीवार के साथ लगे आदमकद शीशे में उसे अपनी छवि तैरती हुई दिखाई दी। वह मुड़कर दुबारा उसी कोण पर आ गई और अपनी छवि को अच्छी तरह निहारने लगी। छोटी-सी ज़िन्दगी में अनेक यातनाएं और दुःख सहने के बावजूद भी उसके रूप-लावण्य में कोई कमी न आई थी। उसकी आंखों की चंचलता, तराशी हुई नाक के ऊपर दोनों ओर फैली-सी भौंहें, शुभ्र वर्ण पर गुलाबी छटा—यह सब उसके भरे यौवन के प्रत्यक्ष चिन्ह थे। तभी उसे ख्याल आया, पर यह सब किसके लिए? उसकी आंखें भर आयीं। मौन वातावरण में उसकी घुटी हुई हिचकियां उभरने लगीं। धीरे-धीरे वह किन्हीं ख्यालों में खो गई। थोड़ी देर पहले जहां उसे

अपनी सूरत नज़र आ रही थी वहीं अब उसकी बचपन की सहेली शबनम मुस्करा रही थी। शबनम, उसकी प्रिय सहेली। ऐसे मौकों पर सदैव उसको सांत्वना देती थी।

'हलीमा, अब कैसा है तुम्हारा पति?'

हलीमा असमंजस में पड़ गई। वही पुराना प्रश्न। न जाने चार साल पहले सहेली के इस प्रश्न का उसने क्या उत्तर दिया था। शायद वही जो प्रायः सभी अनुभवहीन नयी-नवेलियां देती हैं, पति के प्रेम की खुल कर प्रशंसा और उसके वायदों व चाहतों का बढ़-चढ़कर बखान। तब शबनम हलीमा का उत्तर सुनकर हंस दी थी।

"अच्छी तरह से देख लिया है या यों ही कह रही हो।"

हलीमा को आज ध्यान आया कि उस दिन कितना तीखा लगा था उसे शबनम का यह सवाल।

हलीमा के जज़्बात एक बारगी उफ़न पड़े—

"नहीं-नहीं, वह बाजारी है, लुच्चा है, लफंगा है। मुझ से उसकी भूख नहीं मिटती।"

"मगर क्यों? तुझ में क्या कमी है, तुझ जैसी उसे और कहां मिलेगी?"

हलीमा से इस प्रश्न का कोई उत्तर न बन पड़ा। वह शीशे के सामने अविचल खड़ी रही।

"बोलती क्यों नहीं, तुझ में कौन-सी कमी है जो तेरा पति इधर-उधर भटकता है।" शबनम ने अपना प्रश्न दोहराया।

हलीमा चिल्ला पड़ी—"नहीं, मुझ में कोई कमी नहीं है। वह लुच्चा है, लफंगा है। जिस दिन बाहर उसे कुछ नहीं मिलता उस दिन भूखे भेड़िए की तरह मुझ पर टूट पड़ता है।"

एक अजीब और डरावना ठहाका उसके कानों में गूंज उठा। हलीमा डर गई। उसके बदन से कंपकपी छूट गई। वह फिर अकेले रह गई इस ठहाके का अर्थ ढूंढने के लिए। तभी मन में कुछ निश्चय करके वह कमरे से बाहर निकल कर बाथ-रूम गई। मकबूल की आकृति उसके ज़ेहन में उभर-उभर कर उसके दृष्टि-पट के सामने आने लगी। इस समय उसे उसकी आंखों की वह भूख मोहक लग रही है। अपने पति से बदला लेने के लिए मकबूल अच्छा ज़रिया है। वह सोचने लगी और इन्हीं ख्यालों में भटकने लगी।

स्नान कर लेने के बाद हलीमा मेकअप के लिए शीशे के सामने आई। बक्से से बढ़िया से बढ़िया कपड़े निकाले। शीशे के सामने दुबारा आकर वह

पुनः अपना जायज़ा लेने लगी । अपने निश्चय पर वह कभी पुलकित हो उठती और कभी सहम जाती ।

किसी के कदमों की आहट हुई और उसी के साथ उसके पति ने दरवाज़ा खोला । हलीमा ने उड़ती हुई दृष्टि से पति को देखा, शायद आज बाहर उसे कुछ हाथ नहीं लगा है, तभी वापस आया है । वह अब भी शीशे के सामने बैठी खुद को निहार रही थी । क्षण भर बाद उसने फिर पति की ओर देखा । बस, एक ही नज़र से उसका तन-बदन तप गया और भूखे भेड़िए की तरह वह हलीमा पर टूट पड़ा । किसी अनजान कोने से कोई बादल का टुकड़ा प्रकट हो गया था और शायद सहरा में आज फिर वर्षा होने वाली थी । उसने हलीमा को अपने सीने के साथ लगा लिया और उसके होंठों पर अपने होंठ रख दिए ।

हलीमा सोचने लगी, मेरा पति, संसार की सभी नियामतों से प्यारा और अमोल है । मैं तो यों ही व्यग्र हो उठती हूं ।

अनु० शिवन कृष्ण रैणा

चोर

□ हरिकृष्ण कौल

हज़रत, समय यही एक बजे रहा होगा। दिन भर का थका मांदा मैं लाश जैसा पड़ा था कि बीवी ने जगाया। मुझे बहुत बुरा लगा। नहीं लगता? मैं उस पर बरस पड़ा, 'बोल री, कौन सी कयामत आई है? उसने कहा, 'इतना सारा शोर नहीं सुनाई दिया? मालूम होता है मुहल्ले में कहीं आग लगी है।' लो साहब, अब मेरे दिमाग में घुसा गुस्सा कहां रहता? मैं बिस्तर से बाहर आया। जल्दी-जल्दी चप्पल पहनी और बाहर सड़क पर आ गया। सड़क पर मैंने लोगों का हजूम देखा। काफी शोर था। मगर यह शोर आग लगने के शोर से भिन्न था। मेरी जान में जान आई। नहीं आती? आंखें मलता हुआ मैं भी हजूम के निकट पहुंचा। धत् तेरे की! इन लोगों ने एक चोर को पकड़ा था और उसे बुरी तरह पीट रहे थे। कोई थप्पड़ लगाता था। कोई लात मारता था तो कोई घूंसा लगाता था। अरे, इतने में ही किसी साले ने चोर के माथे पर अपने सिर से ऐसी टक्कर मारी कि चोर बेचारा चारों खाने चित्त। मैं समझा कि किस्सा ही खत्म हो गया! नहीं समझता? मैंने पीटने वालों को फटकारा। नहीं फटकारता? कहा, अरे मरदु'ओ, क्या तुम इसे अब जान से ही मार डालोगे? अगर तुमने इसे चोरी करते पकड़ा है तो पुलिस के हवाले क्यों नहीं करते? इसे अधमुआ करने का तुम्हें क्या अधिकार है? मेरी बातें सुन कर चोर जैसे यकायक जिन्दा हो गया। असल में उसने भी स्वांग ही रचा था। वह दिल खोल कर मुझे दुआएं देने लगा। जा, खुदा तुझे आबाद रखे। जा, तेरी सेहत बनी रहे! जा तू.........

अबे तू यह किताब लेकर बैठा है? मैं क्या बकवास कर रहा हूं? क्या कहा! क्लास लेनी है। क्लास लेनी है तो क्या हुआ? किसने कहा है कि क्लास में जाने से पहले जरूर 'लेसन' पर नज़र डालनी चाहिए? मेरी भी पन्द्रह साल सर्विस है। तेरे मरने की कसम अगर मैंने क्लास लेने से पहले कभी किताब खोल कर देखी हो। कभी जरूरत ही नहीं पड़ी। कर दे किताब

बन्द। हां, ऐसे ही। ......हां तो, तो मैं क्या कह रहा था? हां, याद आया। मैंने उन लोगों से कहा कि वे चोर को पुलिस के हवाले करें। कुछ लोगों ने मेरी बात मानी, कुछ लोगों ने नहीं मानी। मगर आखिर में यही फैसला हुआ कि चोर को पुलिस के हवाले किया जाए। दो आदमी थाने पर गये और वहां से अपने साथ तीन सिपाही ले आए। सिपाही चोर को लेकर चले गये और लोगों ने भी अपने-अपने घरों की राह ली।

एक सप्ताह बीत गया। एक दिन मैं कालेज जाने के लिए घर से निकल ही रहा था कि पांच छ: मुहल्ले वाले मेरे पास आये। मैंने उन से आने का कारण पूछा। उनमें से एक बोल उठा—गुलाम नबी साहब, उस दिन आप ने ही इस बात पर ज़ोर दिया था कि चोर को पुलिस के हवाले किया जाये। देखिये, इतने दिन बीत गये। पुलिस वालों ने कौन सी कारवाई की? आप नहीं जानते, इन चोरों और पुलिस वालों का आपस में दस आने छ: आने वाला हिसाब होता है। थोड़ी देर सोच कर मैंने उनसे पूछा कि इन दिनों वहां का थानेदार कौन है। उन्होंने बताया कि थानेदार मुहल्ला कावडारा का कोई बशीर अहमद है। मैं समझ गया कि यह कोई और नहीं, अपना बचपन का यार बशीर लाला होगा। हम सातवीं जमात में एक साथ दिलावर खां के बाग वाले स्कूल में पढ़ा करते थे। रैणा साहब के सामने कहते मुंह शर्म से झुक जाता है, मैं, रहीम, गुजरी और एक लड़का। हम चारों इस बशीरे को हर जुम्मे के दिन नाले के उस पार ले जाते थे। जी हां, बचपन में हम भी पठानों का शौक रखते थे। खैर, उस दिन शाम को मैं थाने पर बशीर अहमद से मिला। खुदा के सामने जवाब देना है अत: झूठ क्यों बोलूं? बशीर लाला ने मेरी बहुत खातिरदारी की। उसने मुझे चाय पिलाई। चाय के साथ बाकिरखानी और अण्डा खिलाया। असल में बचपन की मुहब्बत कभी मरती नहीं। खैर, चाय पीकर मैंने उसके साथ मतलब की बात की। उसने कहा—मानता हूं कि तुम लोगों ने सचमुच चोर को रंगे हाथों पकड़ा। मगर सबूत क्या है? हम तब तक कोई कारवाई नहीं कर सकते जब तक हमारे पास कोई पक्का सबूत न हो। मैंने कहा कि इस बात के इतने लोग गवाह हैं और क्या चाहिए? उसने कहा—केवल गवाही से काम नहीं चलेगा। कोई पक्का सबूत होना चाहिए। तुम मुहल्ले वालों से चन्द एक चीज़ें इकट्ठी करने के लिए कहो। मसलन कोई शाल-दुशाला, सूट, एक आध ज़ेवर ट्रांजिस्टर या घड़ी, दस-बीस किलो वज़नी तांबे के बर्तन। हम 'केस' बनायेंगे कि चोर इस माले-मसरूका के समेत पकड़ा गया। इससे कानूनी पक्ष दृढ़ हो जायेगा और चोर को सज़ा मिलेगी। उसके बाद वे अपनी चीज़ें वापस ले सकते हैं। मुझे लगा कि बशीर लाला उचित ही कह रहा है। मैंने घर आकर यह बात मुहल्ले वालों से कही। नहीं कहता? हां, यह बताना मैं भूल

गया कि जिस समय मैं बशीर लाला के कमरे से बाहर निकला, मैंने उस चोर को बरामदे में चटाई पर बैठ कर सिंघाड़े के पकौड़े खाते और दो सिपाहियों के साथ किसी अजीज़ राथर की बहू के बारे में बतियाते देखा। उसने ज्योंही मुझे देखा, बड़े आदर भाव के साथ खड़ा हो गया जैसे मैं उसका बाप था। वह मुझे भांडों की तरह दुआएं देने लगा। "खुदा करे तू फले और फूले यदि तू उनसे नहीं कहता कि मुझे पुलिस के हवाले करें तो वे साले मेरे पुर्जे उड़ा देते। मेरी बोटी-बोटी नोंच कर कुत्तों के आगे डाल देते।" मुझे यह सब सुनना अच्छा लगा, मैंने कहा, 'यह मेरा फर्ज था।' सच कहता हूं कि सिंघाड़े के पकौड़े देख कर मेरे मुंह में पानी भर आया। नहीं आता? जी में आया कि उससे एक दो पकौड़े मांग ही लूं। मगर डरा कहीं वह यह न सोचे कि मास्टर लोग सचमुच भुक्खड़ होते हैं। मैं मन मसोस कर रह गया।

बशीर लाले के साथ हुई बातें जब मैंने मुहल्ले वालों को बताईं तो उन्हें जैसे गोली लगी। एक ने कहा—गुलाम नबी साहब, माफ करें, या आप खुद उल्लू हैं या हमें उल्लू बना रहे हैं। इससे पहले भी इसी तरह हमने एक चोर को पकड़ा—आप उन दिनों अनन्तनाग में थे—और इसी तरह बशीर अहमद थानेदार ने हमें कुछ कीमती चीजें इकट्ठी करने का परामर्श दिया। फिर क्या होना था? न ही चोर को सजा मिली और न ही हमें वे चीजें वापस मिलीं। वे सारी चीजें बशीर अहमद खुद ले गया। उनकी बातों से मुझे लगा कि वे झूठ नहीं बोल रहे हैं और मैं तत्काल थाने पर गया। नहीं जाता? वहां पहुंच कर मैं बशीर लाले पर बरस पड़ा। मैंने उससे कहा, 'बेईमान कहीं के, क्या अब यह भी करने लगे हो। इससे बेहतर है भीख मांगो।' चाहा कि यह भी कह डालूं, 'साले, अगर तुम्हें शाल-दुशाला या ट्रांजिस्टर चाहिए तो मेरे साथ नाले के उस पार चलो। इस उम्र में भी ऐश कराऊंगा।' मगर चुप रहा। बेचारे बशीर लाले ने कुरान की कसम खा कर और कलमा पढ़ कर कहा कि वे चीजें उसे नहीं चोर को मिली। मैंने कहा—'क्या बकते हो? उसने कहा—'बकता नहीं सच कहता हूं। अदालत में चोर के खिलाफ केस साबित ही नहीं हुआ। कानून में बड़ी बारीकियां होती हैं। चोर ने कहा कि वह सामान माले मसरूका नहीं, उसका अपना सामान है और जज उसके साथ सहमत हुआ। हम क्या कर सकते थे?"

की गल्ल है ओ नामा सिंहा? क्या कहते हैं? मेरी क्लास है? घंटी बज गयी क्या? अच्छा कह दो इनसे मैं आज क्लास नहीं लूंगा। आज छुट्टी मनायें। मगर कह दो कोई हंगामा खड़ा न करें। क्या कहा? 'गैस' मांगते हैं? इम्तिहान के लिये ज़रूरी सवाल मांगते हैं? कह दो ज़रूरी सवालों की क्या ज़रूरत है, इम्तिहान हाल में ही अपना कमाल दिखायें। भगा दो यहां से इन्हें। दफा कर दो। हजरत, इम्तिहान के हालों में हो रहा कमाल मैंने इस साल मार्च

में देखा। इम्तिहान एम० ए० का हो रहा था और मैं था डिप्टी। मैं इन झमेलों में नहीं पड़ता पर करता क्या? प्रिंसिपल साहब ने मजबूर किया। सुपरिन्टेन्डेन्ट एक पिलपिली साहब था। नाम बताने से कोई फ़ायदा नहीं। जवाहर लाल जी मुस्करा रहे हैं। शायद समझ गये कि यह पिलपिली साहब कौन था। भाई मेरे, राज़ को राज ही रहने दो। अच्छा तो खुदा आपको सेहत बख्शे, यह पिलपिली साहब हाल में बड़ी अकड़ दिखाता था। ऐसी अकड़ कि पंछी भी पर फड़फड़ा न सके। मगर जो पांच छः लड़के उसकी मेज के ठीक सामने इम्तिहान दे रहे थे, मज़े से किताबें खोल कर नकल कर रहे थे। मुझे लगा कि यह सरासर नाजायज़ है मैंने धीरे से बाकी लड़कों से कहा,—'देखते क्या हो? तुम भी मौज करो। क्या यह पांच छः लड़के ही इसके दामाद लगते हैं और तुम नहीं लगते हो, बस उन बाकी लड़कों को मेरा 'मॉरल सपोर्ट' मिला। नहीं मिलता? उन्होंने भी जेबों से किताबों के पन्ने और स्लिप निकाले और बेफिक्री से इम्तिहान देने लगे। असल में उन्होंने भी सामग्री साथ लाई थी, पर साहस नहीं था उनके पास। पिलपिली साहब ने नाराज़ होकर मुझ से कहा—'यह नाजायज़ बात है।' मैंने कहा—'बात पहले नाजायज़ थी, अब नहीं रही। हमारे लिये सभी लड़के एक जैसे हैं। बाकी रहा कायदा कानून। हम कायदे से ही चलेंगे।" आख़िर उसने भी चुप रहना ही उचित समझा। अब हम तीन घंटों में तेरह बार लड़कों को वारनिंग देते थे कि अगर उनमें से किसी ने नकल की, या नकल करने की कोशिश की या अपने पास कोई किताब, कापी या कागज़ रखा, या किसी लड़के की मदद करने या किसी से मदद लेने की कोशिश की तो उसे एक साल से लेकर पांच साल तक डिस्क्वालिफाय किया जायेगा। यह वारनिंग देना हमारी ड्यूटी थी। हां, वारनिंग देने के बाद मैं एक लड़के की किताब दूसरे लड़के तक पहुंचाता। किसी-किसी को सवाल भी समझाता। जहां तक सवाल मेरी समझ में आ जाता। किसी को सवालों के जवाब लिखाता। अपनी बुद्धि और जानकारी के अनुसार। बस फिर क्या था, इम्तिहान बहुत अच्छी तरह चला! एक पर्चे में अन्य सेंटरों पर हड़ताल हुई मगर हमारे लड़के शांति से बैठे रहे। नहीं बैठते? यूनिवर्सिटी के हाकिम भी हमारा काम देखकर खुश हो गये। रैणा साहिब, क्या फरमाया आपने? यह गिरावट की हद है। मानता हूं। पर पिछले साल आप को गिरावट क्यों नज़र नहीं आयी जब आप की लड़की का 'प्रैक्टिकल' मेरे पास था। जब आप मुंह अन्धेरे ही सेंटर पर पहुंच गये थे और एक घंटा पहले ही मुझसे पूछ बैठे थे—क्यों जी, कौन सा 'साल्ट' रखा है? याद आ गया? मैं सोच रहा था कहीं भूल तो नहीं बैठे! ऐसी बातें आदमी प्रायः भूल जाता है। हटाइए। जिस की भी दुम जरा सी हटाते हैं, भेड़ ही नज़र आती है। अरे, रैणा साहब नाराज़ हो गये। अच्छा साहब माफी दीजिए। नकल करने वालों और नकल न करने वालों, दोनों को गोली मार दीजिए

और बशीर लाला का किस्सा सुनिये। बड़ा रस मिल रहा था आपको। हां तो मैं क्या कह रहा था? ठीक है, याद आया। तो, साहब बशीर लाले ने कहा कि अदालत ने वे चीजें चोर को ही दीं। अब तुम्हीं मुहल्ले वालों को सारी बात समझा दो। मैंने मुहल्ले वालों को समझाया और वे समझ गये। दूसरे दिन उन्होंने कुछ चीजें इकट्ठी कीं और थाने पर पहुंचा दीं। मगर कैसी चीज़ें? यही टूटी हुई तश्तरी, फटा हुआ फिरन, बिना पेंदीं की पतीली। शायद उन्होंने सोचा होगा कि ये चीज़ें यदि वापस मिलीं तो ठीक। वापस न मिलीं तब भी कोई गम नहीं। खैर बात आयी गयी हो गयी। कुछ समय ऐसे ही बीता और तब एक दिन बशीर अहमद मेरे पास आया। उसने मुझ से कहा—लो यार, कल उस चोर की अदालत में पेशी है। फुरसत हो तो आके देख लेना। फिर इकट्ठे आहदू के रेस्तरां में चाय पियेंगे।...नामा सिंह एक गिलास पानी लाना।... कल, याने दूसरे दिन कालेज एक बजे ही बंद हो गया। प्रो० रामनारायण और प्रो० सिद्दीक ने मुसलमान लड़कों से अर्जी लिखायी कि दस्तगीर साहब के उर्से-मुबारक के सिलसिले में कालेज बंद होना चाहिए। कालेज बंद हो गया। रामनारायण सोने या फिर जाने क्या करने के लिये घर चला गया। सिद्दीक ट्यूशन करने चला गया। लड़कों ने सिनेमा की राह ली। मुझे बशीर लाले की बात याद आयी और मैं अदालत पहुंचा।...रैणा साहब, स्टाफ रूम के लिये अब नये गिलास मंगवाने चाहिएं। नामा सिंह, अगर कल इस गिलास में पानी लाओगे तो याद रखना मैं यह गिलास ही तुम्हारे सिर पर फोड़ डालूंगा। हां साहब, मैं जब अदालत के कमरे में दाखिल हुआ, जज के आगे इसी केस की पेशी हो रही थी। बशीर अहमद जज के सामने कोई बयान दे रहा था और जज किसी रंगीन पत्रिका के पन्ने पलट रहा था। चोर कठघरे में खड़ा था और उसके साथ दो सिपाही खड़े थे। मैं कोने में खड़ा रह कर तमाशा देखने लगा। वहां मुंशी एक साइल से जाने किस बात के लिये पैसे मांगता था। मैंने देखा कि मेरे वहां खड़े रहने से वे खुलकर बात नहीं कर पा रहे हैं। अतः मैं दूसरे कोने की ओर चला आया। अचानक चोर की दृष्टि मुझ पर पड़ी और उसने निहायत अदब के साथ मुझे सलाम किया। मैंने भी मुस्करा कर उसके सलाम का जवाब दिया। तब उस ने जेब से गोल्ड फ्लेक सिगरेट का एक पैकेट निकाला और मुझे दे दिया। शर्म से मेरे गाल लाल हो गये। नहीं हो जाते? मगर फिर विचार आया कि चलो मेरा भी क्या जाता है? कम से कम जिन्दगी में एक दिन सिगरेट के पैसे बचे। और फिर यार लोग जब गोल्ड फ्लैक सिगरेट पीते प्रोफेसर गुलाम नबी, लेक्चरर इन केमिस्ट्री, को देखेंगे तो उनकी छाती पर सांप लोटने लगेंगे। हजरत, हम भी अजीब हैं। एक साथ ही प्रोफेसर भी हैं और लेक्चरर भी। अपने जैसा ही एक आदमी मैंने जम्मू में देखा था। वह खुद अपना परिचय इस प्रकार देता था—डॉक्टर तेज राम शर्मा, कम्पाउंडर।

खैर ! मैंने चोर से सिगरेट ले लिये । नहीं लेता ? सिगरेट पीने के लिये मैं बाहर निकला । मैंने एक लम्बा कश लिया और होंठ गोल कर के धुएं के छल्ले हवा में उड़ाने लगा । तभी किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा । मैंने पलट कर देखा । यह कोई और नहीं, अपना बशीर लाला ही था । वह मुझे अलग ले जा कर कहने लगा—यार लगता है यह चोर तुम्हें बहुत मानता है । उसे कह दो अगर वह दो सौ रुपये देगा तो हम केस को ही वापस ले लेंगे । बशीर अहमद की बात सुन कर मुझे खुशी ही हुई । यदि थोड़े से लेन-देन से ही बात मिट जाए तो हर्ज क्या है । मुकद्दमेबाजी में वे पड़ें जिन्हें पागल कुत्ते ने काट खाया हो । लगभग आधे घंटे के बाद जब सिपाही चोर को अदालत से बाहर ले आये, मैंने उसके कान में बशीर अहमद का संदेशा डाल दिया । मगर वह साला अकड़ गया । कहने लगा—अगर तीन सौ देगा, तो मैं उसे छोड़ दूंगा । वह भी आपकी खातिर । मैं शर्मिंदा हो गया । नहीं होता ? चोर थानेदार के चंगुल में होता है ? यह मैं जानता था । मगर एक थानेदार चोर के चंगुल में कैसे हो सकता है—यह बात मैं आज तक नहीं समझा सका हूं ।

फिर ? फिर क्या होना था ? यह छठे दशक की कश्मीरी कहानी थोड़े ही है कि अंत में परिस्थितियां ऐसा पलटा खायेंगी कि पाठक हैरान और परेशान हो जायेंगे । मेरे प्रयत्नों के बावजूद चोर और बशीर लाले में कोई फैसला नहीं हुआ । हो जाता तो ठीक था । मुमकिन है मुझे भी अपना कमीशन मिलता । हो सकता है बाद में कोई फैसला हुआ हो । मुझे उसकी खबर नहीं । दो चार दिन बाद ही हम वह पुराना मुहल्ला छोड़ कर जवाहर नगर वाले नये मकान में रहने चले आये । अच्छा, गोली मार दो दोनों को और मुझे एक सिगरेट पिलाओ ।

□

एक तिकोन यह भी

□ रतन लाल शांत

सुरेन्द्र और रत्नी की इस कहानी को 'लव स्टोरी' कहें या नहीं, यह फैसला करना मुश्किल है।

जब वे अदालत के आंगन से बाहर निकले, तो दोनों हल्का अनुभव कर रहे थे। उनके दिमाग ताज़ा हुए लग रहे थे। वे एक दूसरे के अगल-बगल चलने लगे। एक दूसरे की ओर चोर नज़रों से यूं देखते रहे जैसे एक नया प्रेमी युगल मां बाप को मनाने में सफल हुआ हो और तड़प रहा हो कि घर-आंगन तथा भीड़भाड़ से बाहर निकलकर कोई एकांत पालें जहां खुल कर गले मिलें और इस अप्रत्याशित सफलता पर एक दूसरे को बधाई दें। नहीं तो, जन्म-जन्मांतर के पति पत्नी भी हों, तलाकनामे पर हस्ताक्षर होने के बाद, कोई इस तरह साथ-साथ चलता है, कदम मिलाकर···?

अदालत के प्रांगण से बाहर निकलकर सुरेन्द्र रुका, दुकानदार से सिगरेट की डिबिया ली और वापिस रत्नी से जा मिला, जो अनायास रुककर उसकी प्रतीक्षा सी करती खड़ी थी। सिगरेट सुलगा कर सुरेन्द्र दायें मुड़ा तो रत्नी भी मुड़कर उसके साथ हो ली। इस बाज़ार का सबसे बड़ा होटल रास्ते में आया तो इन दोनों के कदम रुक गए।

पहले सुरेन्द्र बोला—"चाय की सख्त तलब हो रही है। मगर···" जवाब दिए बिना ही रत्नी आगे बढ़ी और होटल के गेट से अन्दर जाकर सीढ़ियां चढ़ने लगी, जैसे वह उसके मुंह से बात निकलने भर का इन्तज़ार कर रही थी। यह और बात है कि उसे खूब मालूम था कि यह सुरेन्द्र का प्रिय होटल है, जहां वह अपने दोस्तों के साथ घण्टों बिताया करता है। एक दिन रत्नी ने यहां जाने की इच्छा प्रकट की थी तो सुरेन्द्र ने डांट कर चुप कराया था—"वहां शरीफ घरानों की स्त्रियां नहीं जातीं।" उस दिन इसी बात को लेकर बात बढ़ गई थी और रत्नी मायके भाग गई थी।

दोनों एक केबिन में घुसे। वेटर आया तो रत्नी बेधड़क बोली "आज का आर्डर मेरा।" और सुरेन्द्र के कुछ कहने से पहले ही खाने पीने की कई महंगी चीजों का आर्डर दिया। हॉल में से किसी अंग्रेजी गाने की पंक्तियां उड़कर केबिन में आ रही थीं, जैसे महक की लहरें।

चाय आ गई। दोनों ने अपने लिए खुद बनाई। सुरेन्द्र चाय का घूंट भर रहा था और साथ ही देख रहा था कि रत्नी के चेहरे पर कैसे-कैसे भाव उभर रहे हैं। रत्नी लगातार फर्श की ओर देखकर चाय की चुस्कियां ले रही थी।

वर्षों बाद ये दोनों आज साथ बैठकर चाय पी रहे थे। इतनी देर···एक साथ···।

पिछले महीने तो दोनों की हालत पागल कुत्तों सी थी। बात-बात पर उलझ पड़ते। हर दम लड़ने को तत्पर। रत्नी सुबह सवेरे स्कूल चली जाती और जाते हुए दुनी चन्द को सुरेन्द्र के लिए आदेश दे जाती। सुरेन्द्र कुछ खाता पीता या नहीं, इसकी कोई फ़िक्र नहीं करती। रात को वह देर से लौटता और किसी लावारिस लाश की तरह बिस्तर पर निढाल पड़ा रहता। रत्नी हफ़्तों मायके रहती और सुरेन्द्र रातें दोस्तों के घर बिताया करता। कोई किसी को पूछता नहीं। चिंता का कोई रिश्ता बचा नहीं रह गया था। कई-कई दिनों एक दूसरे से नहीं मिलते। सिर्फ दुनीचंद इनके बीच एक सांझा सूत्र रह गया था जो आदत से एक से दूसरे के बारे में पूछता और डांट पाकर अपनी बेवकूफ़ी पर पछताता।

वेटर आकर खड़ा रहा, हल्के से मुस्कराता हुआ। रत्नी समझ न पाई। उसने सुरेन्द्र की ओर देखा। सुरेन्द्र के माथे पर छोटे कटे बालों का छज्जा फैला था। उसके गाल आज कुछ ज़्यादा लाल लग रहे थे। ज़ीरो नंबर शेव से हल्की-सी हरियाली का बिंब कनपटियों और ठोड़ी पर पड़ रहा था।

वेटर फिर मुस्कराया और एक कार्ड पहले सुरेन्द्र फिर रत्नी के सामने रख दिया। उस पर लिखा था—आप किसी खास गाने या ट्यून का अनुरोध करना चाहते हों तो बताइए वही बजाया जाएगा।

रत्नी ने सिर हिलाकर कहा कि कोई नहीं। वेटर कार्ड लेकर चला गया। वह खिड़की से बाहर अमीराकदल के व्यस्त चौक में जाने क्या देखने लगी।

उस दिन घर पर कई दिनों अनुपस्थित रहने के बाद रत्नी की मुलाकात सुरेन्द्र से अचानक इसी चौक में हुई। उसके साथ स्कूल की प्रिंसीपल थीं, जिसने उसका ध्यान दूर चलते हुए सुरेन्द्र की ओर आकृष्ट किया—"देखो तुम्हीं को ढूंढते लगते हैं। आज की शाम यहीं कहीं मनाने का प्रोग्राम है क्या ?"

उन्हें देखकर सुरेन्द्र को पास आना पड़ा। उसने प्रिंसीपल साहिब को 'आदाब' कहा। उन्होंने जैसे अधिकार के साथ सुरेन्द्र से शिकायत की।

"प्रोफ़ेसर साहब ! यह क्या हाल कर दिया है आपने रत्नाजी का ? रोज-रोज दुबली हुई जा रही हैं।"

सुरेन्द्र ने भी जैसे पहली बार देखा हो, वाकई रत्नी बदली सी लग रही थी। पर, खुद वह भी कौन सेहतमंद है ? उसकी भी फ़िक्र किसे है ?

प्रिंसीपल ने देखा कि दोनों बगलें झांक रहे हैं। शायद उसकी शुभचिंता इन्हें प्रभावित कर रही है। फिर कहने लगी।

"देखो भई ! आपकी फैमिली एक आइडियल फैमिली है। हम स्कूल में बात-बात पर आपकी ही मिसाल देते हैं। जितने दिन चले, हल्के फुल्के रहिए। मतलब "बच्चे होते हैं तो अपना आराम जाता है…जिन्दगी की शांति चली जाती है।"

बच्चे नहीं थे पर न शांति थी, न आराम ही इनकी ज़िन्दगी में था।

प्रिंसीपल ने इन्हें मिलाकर जैसे इनके लिए समस्या पैदा कर दी। सुरेन्द्र ने रत्नी से पूछा—"कहां जा रही हो ? घर या रैना वारी ?"

रत्नी ने अनमना जवाब दिया—"मैं घर भी जा सकती हूं। आई डोंट माइंड…।"

दोनों बस में बैठे।

रास्ते भर कोई न बोला।

घर पहुंचकर सीधे बेडरूम में चले गए। दुनीचंद वहीं दोनों की चाय ले आया। उनकी तनी हुए भौंहें देखकर कुछ पूछ न सका और चला गया।

पहले रत्नी बोली "आइ एम सॉरी ! तुम्हें जाने कहां जाना था। मेरी प्रिंसीपल के कारण घर आना पड़ा।"

सुरेन्द्र के चेहरे का तनाव साफ नज़र आ रहा था। रत्नी फिर बोली "मैं जानती हूं तुम बहुत दिनों से मुझ से लड़ने का बहाना ढूंढ रहे होंगे। मैं रैनावारी चली गई। इससे तुम और चिढ़ गए।"

सुरेन्द्र चुपचाप घूंट-घूंट चाय पीता रहा। थोड़ी देर बोला

"तुम्हारा स्कूल मायके से नजदीक पड़ता है। इसीलिए जब चाहो, जाया करती हो।"

रत्नी खड़ी हो गई "जमाने बीते जब से तुम्हें हंसते देखा हो।…तुम बेवजह मेरे कारण बन्दी महसूस कर रहे हो : …बस मैं मर खप जाती तो तुम छूट जाते" जाने घर में आकर ही तुम्हारी जुबान को ताला क्यों लग जाता है…बाहर तो चहकते रहते हो।"

सुरेन्द्र हंस पड़ा "आज डायलाग बदल डाला। ऐसे कहो "मैं मर जाती तो अपना सिर माथा पीट-पीटकर रोते रह जाते।"

रत्नी कपड़े बदलने लगी "हां, माथा पीट कर रोते रह जाओगे कोई आकर पूछेगा भी नहीं।"

सुरेन्द्र भी उठ कर कपड़े बदलने लगा "मैंने तुम्हें कह दिया है कि तुम खुद को कोसकर मानसिक संतोष पालती हो कि मैं यह सब सुनकर परेशान हो जाता हूं तुम्हारे कोसनों के परिणाम सोचकर व्याकुल हो जाता हूं। मगर यह सब तुम्हारी गलतफ़हमी है।"

रत्नी सुरेन्द्र के सामने खड़ी हो गई और नाटकीयता से बोली

"....और यह कि तुम्हें यह सुनकर ज़रा भी परवाह नहीं होती, क्योंकि तुम्हारा दिल लोहे का है और संकल्प स्टील का। है न ?"

दरवाज़े पर नौकर आकर खड़ा हो गया था। रत्नी ने उसे देखकर कहा "तू यहां क्या कर रहा है ? क्या चाहिए ?"

इस समय दुनीचंद घबराया "सब्ज़ी क्या पकाऊंगा, जी ?"

उसे सुरेन्द्र ने जवाब दिया "मांस ! आज बिरयानी खाने को जी करता है। मांस का पुलाव, रे !"

रत्नी ने नौकर से ही कहा "घी नहीं है, रे ! पुलाव नहीं बनेगा।"

नौकर शरारत से मुस्करा उठा "परसों साहब ले आए, जब आप रैना बारी...।"

बात खुद ही बीच में काटकर चला गया।

सुरेन्द्र ने बात का छूटा सूत्र फिर पकड़ा "मेरे स्टील के संकल्प को नहीं जानतीं ? विवाह का वक्त फिर याद दिलाऊं ?"

लगता था कि रत्नी जैसे निरुत्तर हो गई। "बचपने के किस्से नहीं दोहराने मुझे। हूं ! बस विवाह का वक्त रटते चले जा रहे हो... मैंने तुम्हें एक ही बार कहा है कि तुम घुन्ने हो घुन्ने। तुम अकेले ही अच्छे थे। तुम्हें शादी करनी ही नहीं चाहिए थी।"

"न करता तो तुम्हारे ये ओरिजनल कोसने सुनने का शुभ संयोग कहां मिलता ?"

रत्नी जैसे अपने आप से बोलने लगी "क्या करूं, हिंदोस्तान में जो पैदा हुई। फिर कश्मीरी पंडित लड़की ठहरी। किस-किस से उलझ सकूं ? तुम्हारा क्या, तुम मेरे बगैर ही अच्छे।"

"हां, हां अच्छा हूं। तू क्या समझती है कि मैं रोऊं और तुम्हारा दामन पकड़कर मनुहार करूं—ओ, मुझे मत छोड़ना, मुझे छोड़ के चली जाओगी तो तड़प कर जान दे दूंगा।"

फिर सिगरेट जलाकर उसके पास गया और रहस्यात्मकता से बोला "सुनो, खुद को कोस कर तुझे सुख मिलता है क्यों मेरा दिल जिगर तड़पाना चाहती हो "

रत्नी चोली बांध रही थी। उसके हाथ रुक गए। मुंह अंगारे सा लाल हो गया। हाथ नचाते हुए पति से बोली

"तुम तड़पो या खुश रहो, मुझे कोई फिक्र नहीं, हां। मैं सात साल पहले की वह रत्नी नहीं जो चिंतित रहा करती थी कि सास ससुर कब सीधे मुंह मुझ से बात करते हैं। पति कब आधी रात घर लौट आता है कि मुझे भी दो सूखे कौर खाने को मिलें। मैं आग में तप कर निखर आई हूं।"

"कितनी बार इन बातों को कह कर घिसाओगी ? अब इनका कोई अर्थ नहीं रह गया।" बेड पर बैठकर और कोई किताब पलटते हुए सुरेन्द्र बोला।

"रहने भी दो अपना यह साइकालाजिकल एनालिसिज़। यह भी चिथड़ा चिथड़ा हो गया है।"

OO

चुपचाप चाय पीकर जब होटल से बाहर निकले तो सुरेन्द्र को लग रहा था कि वह कुछ हल्का हो गया है। अब वह अपनी ज़िन्दगी का अकेला स्वामी है।

आज सुबह जब वे घर से चले तो इस विषय पर ज़रा भी बात नहीं हुई कि तलाक़ के बाद ये कैसे अलग हो जायें। सामान कैसे बंटे। किराये के मकान और नौकर का क्या हो ? बस तैयार हो गए जैसे किसी शादी ब्याह या पार्टी में जाना था। सीधे जज के कमरे में दाखिल हुए और सब से पहले अपने ही तलाक़ नामे पर दस्तखत करा लिए।

अदालत से बाहर आ गए तो कुछ भी पहले से तय न होने के कारण एक साथ हो लिए। होटल से सुरेन्द्र घर की ओर जाने लगा तो रत्नी भी मशीन की तरह उसी के साथ चली। बस में नहीं बैठे। पैदल ही चलने लगे।

जाते समय होटल के बारमैन ने काउंटर पर बैठे-बैठे ही सुरेन्द्र को हाथ हिलाकर विदा किया जैसे कह रहा हो आज लड़की साथ है बेस्ट लक, माइ ब्वाय !

एक दूसरे के साथ यों चल रहे थे जैसे बहुत दिनों बाद यह मौका मिला हो और फिर जाने कब मिले। पहले की बात और थी। यों कोई संयोग होता तो घर पहुंचते ही लड़ पड़ते। इस अर्थहीन रुटीन ज़िन्दगी का उलाहना देते और एक दूसरे को जिम्मेवार ठहराते।

मां बाप के खिलाफ़ पहले सुरेन्द्र ही ने आवाज उठाई थी। तिलक में

आया सामान लौटवा दिया और तयशुदा लड़की के बदले रत्नी से ब्याह करने का ऐलान किया। रत्नी उसी वक्त सब के होते हुए इस घर में चली आई और दोनों हाथ में हाथ डालकर घर से निकल पड़े। पन्द्रह दिन बाद घर लौट आए। मगर घर आकर उनकी सारी भाप निकल गई। वे सोच भी नहीं सकते थे कि उनकी अनुपस्थिति में उनके मां बाप यानि कि नए समधियों ने बात तय की थी और इसलिए रत्नी और सुरेन्द्र की शादी पारम्परिक ढंग से ही हुई। कुछ महीने बाद ही सुरेन्द्र ने मां बाप से किसी बहाने झगड़ा किया और कहा कि मैं अब घर में रह नहीं सकता। उसके कहने की ही देर थी कि बाप ने उसे चाभियां दीं "लो बेटे! तुम्हारे लिए किराए का मकान लिया जा चुका है। एक महीने का किराया भी दे आया हूं।"

सुरेन्द्र भीतर ही भीतर घुट के रह गया। रत्नी जल कर राख।

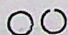
वे घर से चल पड़े, नए घर की ओर तो बाजार में किसी ने रत्नी पर जुमला कसा, "वाह! बड़े दिनों में ऐसा माल आ गया। नसीबां वाले तुझको मेरा सलाम।"

सुरेन्द्र ने अनसुना कर दिया।

इसी बाज़ार में एक दिन उस तांगे वाले से उलझा था जिसने राह चलते रत्नी पर फब्ती कसी थी। उसके तांगे वाले को रोका, उसके हाथ से चाबुक छीना और उसे मार-मार के चाबुक के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। लोगों की भीड़ में हीरो की तरह अपनी विजय मनाता हुआ जब पत्नी के पास पहुंचा तो देखा कि उसकी आंखें रो कर फूल गई थीं। हिचकियां ले लेकर उसने सुरेन्द्र को बताया

"खुद तांगे वाले से उलझने चले गए पर तुम्हें क्या मालूम कि भीड़ में मुझ पर क्या बीती? मेरी इज्ज़त पर हुए हमले का विरोध करते जाना था तो मुझसे पहले ही क्यों नहीं कहा कि दूर जाकर खड़ी रहती...।"

उसके पैरों तले ज़मीन खिसक गई। पत्नी की फटी चोली देखकर पसीना सूख गया। उसने कसम ली कि दोबारा इसे लेकर कहीं जाऊंगा नहीं।



इस समय रत्नी जाने क्या सोच रही थी। उसे देखकर सुरेन्द्र को दया सी आई। पहले इसी को कोई जगह दिलानी होगी। फिर अपने लिए कोई प्रबन्ध करता हूं। यों तो पिछले तीन महीनों से ये अपनी-अपनी ज़िंदगियां बिता रहे थे, अपनी मर्ज़ी से। जब तलाक़ की पहली नोटिस दी तो खींचतान बढ़ने लगी। तलाक़ का फैसला एक नाटकीय क्षण में हो गया।

सुरेन्द्र रोज़ की तरह देर से घर लौटा। पत्नी भी देर ही से आई होगी, कपड़े बदल रही थी। वह अर्धनग्न स्थिति में थी। सुरेन्द्र फट से कमरे में

प्रविष्ट हुआ। वह विचलित नहीं हुई। उसे मालूम था कि यह लौट पड़ेगा और फिर ड्राइंगरूम में ही चाय-खाना मंगवा लेगा। पर सुरेन्द्र ने पीछे से आकर उसके शरीर को चूम-चूम कर ढक दिया। रत्नी बर्फ की शिला की तरह खड़ी रही। निश्चेष्ट।

"कौन सी फिलम देखके आई हो?"

"मैंने यह सब अभी कहां किया जो फिल्मों में करते हैं?"

"बहुत दिनों से डोज़ DOSE नहीं पाया होगा। पर आज यहां पाने की आशा कैसे करने लगे?"

उसने सुरेन्द्र को हल्के से धकेला और कपड़े पहनने लगी।

वह खून का घूंट पीकर रह गया। चिल्ला कर बोला

"तुम और दे भी क्या सकती हो? तुम्हारे पास है क्या? तुम हो क्या?" फिर थोड़ी देर बाद जैसे अपने आप से बोल रहा हो

"मगर तुम वह भी नहीं। मैं बेकार ललचा जाता हूं…तुम कुछ भी नहीं हो…।" उसकी सांस फूलने लगी।

रत्नी ठहाका मार कर हंसने लगी। कपड़े पहन कर आई और सुरेन्द्र के कंधे पर हाथ रख कर कहा

"यही तुम्हारा असली रूप है। यह तो तुम खुद देख ही लेते होगे पर शुक्र है भगवान का आज मैंने भी देखा…।"

○○

बिस्तर में घुस के सुरेन्द्र बोला

"रत्ना! हमें जबरदस्ती कौन चीज़ बांधे हुए है?"

रत्नी शायद अब इस सवाल के लिए तैयार थी। लिहाफ में से सिर बाहर निकाल बोली "कुछ नहीं।"

"हम निकटता और अंतरंगता का नाटक क्यों करें? मन की दूरी तुम अनुभव कर रही हो न?"

"तुम अनुभव नहीं कर रहे? मैं साफ कहूँ कि मुझे लग रहा है कि हम काफी दूर निकल गए हैं अलग-अलग रास्तों पर।"

"हां। सच्ची बात कहने से क्यों डरें?" सुरेन्द्र का चेहरा दीप्त हो रहा था। "हम एक दूसरे पर निर्भर रहने की शर्तें बहुत खींचतान के क्यों पूरी करें? क्या मजबूरी है?"

वह बिस्तरे में ही उठ बैठा। बोला "आज तुम पहली बार इमैनसिपेटेड लग रही हो। खुले दिमाग से सोच रही हो। बोलो, हम किसी भी रूप में एक दूसरे पर निर्भर हैं ?"

रत्नी समझ गई। उसका चेहरा जैसे फक पड़ गया "हां। मैं सांस लेती लाश हूं। मेरी कोई संवेदना ज़िंदा नहीं। अब तो मुझ से यह रुटीन ज़िंदगी भी काटते नहीं कटती।"

गंभीर और भारी स्वर में सुरेन्द्र बोला

"इस से अच्छा था न कि हम अलग हो जायें ?"

फिर बहुत देर खामोशी छाई रही।

सुरेन्द्र सिगरेट पर सिगरेट फूंकता रहा। रत्नी एकटक छत पर नज़र गड़ाए रही।

फिर वह धीरे से उठा और उसके बिस्तरे में घुस गया। रत्नी शिलावत् पड़ी रही। न विरोध किया न साथ दिया।

जाने कितनी देर वे रस्सी बंटते रहे। पर न हरमुख को[1] ही मापा जा सका, न हिमानी पिघली और न झरना ही वापिस पहाड़ पर चढ़ाया जा सका।

○○

घर पहुंच कर सब से पहले मकान की समस्या से सामना हुआ। किराए के कुल तीन कमरे थे। फैसला यह हुआ कि एक-एक कमरा लेंगे और दूसरी जगह मिल जाने तक तीसरा कमरा सांझा रहेगा। नौकर और किचन दोनों के खर्चे से चलेगा।

दुनीचंद ने बेडरूम से एक चारपाई निकाल ली। रत्नी ने अपने कपड़े और सामान भरा ट्रंक अपने कमरे में पहुंचा दिया।

अपने कपड़ों को सहेजते हुए सुरेन्द्र बोला

"हम दोनों मेच्योर हैं। यह अच्छी बात है। किसी तरह की लड़ाई झगड़े के बगैर हमने एक बहुत ही कठिन काम आसान कर दिया।

रत्नी जोश में आ गई थी। बोली 'अपने रिश्तेदार या दोस्त हम ड्राइंग रूम में बिठा सकते हैं।"

---

1. परम्परा है कि हरमुख पर्वत की चोटी की ऊंचाई नापने की गर्ज से एक साधु बारह साल रस्सी बटता रहा। पर जितना दिन को चढ़ता, रात को सोकर फिर उतना ही नीचे पहुंच जाता और सारा परिश्रम असफल हुआ था।

सुरेन्द्र की भौंहे तन गईं "लोगों को धोखा देना है ? या फिर सच्चाई छिपा के रखनी है ?"

"पर विज्ञापन भी तो नहीं बांटते फिरना है ।"

दुनीचंद सुबह से ही खोया सा था । वह आकर फर्श पर बैठ गया । माथा हाथों में पकड़ लिया और रोने लगा

"अब मेरी छुट्टी कर दीजिए । मुझ से यहां रहा नहीं जाएगा ।"

सुरेन्द्र ने उसे समझाया ' देख, तुझे कोई फर्क नहीं पड़ता । कुछ दिन अभी हम यहीं रहेंगे । फिर तू हम में से किसी एक के साथ जाएगा । अच्छा तो मेरे ही साथ रहना ।'

रत्नी ज़ोर से बोली "तुम क्यों ले जाओगे ? यह अब सिर्फ तुम्हारा नहीं । तुम..."

खुद ही बात काट कर उस पार चली गई ।

सुरेन्द्र पलंग पर लंबा हो गया ।

आज वह आज़ाद महसूस कर रहा था । अब उसे पूछने वाला कोई नहीं था कि कहां रहे ? सौदा सुल्फ मंगवाया है ? उसकी आदतों और निजी रवैयों की मीन-मेख निकालने वाला कोई नहीं था । कोई बंधन उसे रोकने वाला नहीं रहा । अब वह शुद्ध और ईमानदार जीवन जिएगा । जैसा बाहर वैसा ही भीतर । न झूठ बोलने की ज़रूरत रही और न बहाने ढूंढ़ने की । वह हैरान था कि यह कौन सी कमज़ोरी उस पर हावी हो गई थी जबकि शादी के वक्त अपने पूरे वातावरण को एक ही झटके में छोड़ सका था । रही रत्नी । वह भी तो अपने पांव पर खड़ी होने योग्य है । जब सहारे की अपेक्षा न हो तो जबरदस्ती थामे रखने में क्या तुक ? वह भी अपना स्थान पहचान लेगी । लोग तो बस नारी स्वतंत्रता की बातें करते हैं, करके दिखाना सब के बूते की बात नहीं ।

शाम को दोनों का खाना उन के अपने कमरे में पहुंचाया गया । खाना खाकर सुरेन्द्र बहुत दिनों बाद निश्चित खुर्राटे भर कर सो सका । मगर रत्नी आधी रात तक बैठी रही । बुनाई के फंदे पर फंदा चढ़ाती हुई...

कल सुबह सुरेन्द्र कमरे पर ताला चढ़ा कर चला गया और तीन दिन बाद लौट आया । रत्नी स्कूल जाती रही और शाम को कर्तव्य परायण गृहस्थिन की तरह घर आती रही । मन रैनाबारी जाना नहीं माना । दूसरे कमरे का ताला तो पहले अनदेखा ही किया फिर एक दिन दुनी चन्द से यों ही पूछ लिया । यह खुद हैरान था इसलिए उसने रत्नी को कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया ।

चौथे दिन सुरेन्द्र देर रात को आया और सीधे कमरे में चला गया। वह अभी ठीक से बैठा भी नहीं था कि रत्नी आ गई। सुरेन्द्र ने कहा,

"नहीं। यह ग़लत है। आप मुझ से कोई एक्सप्लेनेशन नहीं ले सकतीं।"

रत्नी ने कहा, "आप ही गलत समझते हैं। मैं इस समय और काम से आई हूं। मुझे पचास रुपए चाहिएं। परसों पहली तारीख तक के लिए।"

सुरेन्द्र ने उसे रुपये दे दिए। फिर दुनीचंद को आवाज दी।

"यह कीमा लाया हूं। ज़रा भून दो।"

जाते जाते रत्नी कह गई.

"मेरा सुझाव है कि यह आप कल के लिए रहने दें। आज काफी सब्ज़ी बनी है।...मतलब यह कि कल हम दोनों इसके लिए पे करेंगे।"

कह कर वह चली गई।

सुरेन्द्र ने अपने बैग में से बोतल निकाल ली और चौकी मार कर पलंग पर बैठ गया। दुनीचंद समझ गया था। कुछ देर बाद प्लेट में भूना मांस ले आया और उसके सामने रख दिया।

थोड़ी देर बाद रत्नी फिर वहां आ गई।

"हम दोस्तों की तरह नहीं रह सकते, सुरेन्द्र! आई मीन ऐज़ फ्रेंड्स।"

सुरेंद्र की पलकें भारी होने लगी थीं। आंखों में लाल डोरे पड़ने लगे थे। वह कहने लगा,

"क्यों? किराए का मकान नहीं मिल रहा है?"

"सवाल वो नहीं। मतलब...इस वक्त मैं यह तुम्हारा पीना देख नहीं सकती।"

"तुमसे किसने देखने को कहा? खुद ही छम-छम चली आ रही हो।"

रत्नी ने देखते-देखते बोतल उठा ली और अलमारी में रख ली। और अपने कमरे में चली गई।

बोतल फिर अलमारी में से ले आने को सुरेन्द्र उठा नहीं। वह बैठा ही रह गया।

OO

दिन कबूतरों से हवा होते गए। ये या तो दूनीचंद का हिसाब करते समय या बाथरूम में जाते या वहां से निकलते समय एक दूसरे से मिलते। या दरवाज़ा खोलते बंद करते समय लाबी में मिलते और स्कूल कॉलेज संबंधी किसी समाचार पर विचारों का आदान प्रदान करते। और बस!

एक दिन सुरेन्द्र को ख्याल आया कि कई दिनों से रत्नी अपने कमरे से बाहर आ ही नहीं रही। उसने दो एक महिलाओं को आते जाते भी देखा। ये रत्नी की सहकर्मी थीं।

उसने दुनीचंद से पूछा तो पता चला कि बीमार है। दफ्तर से आकर सीधे रत्नी के कमरे में चला गया। देखा कि रत्नी का हाल ठीक नहीं। शरीर फूल गया था। दुनीचंद डॉक्टर भी ले आया था और दवाई भी। वह उसके पास नहीं गया बल्कि बुकशेल्फ के पास खड़ा हो गया। किसी किताब के पन्ने पलटते हुए कहने लगा—

"डॉक्टर को पिछले साल की अस्पताल वाली चिट्ठियां और टेस्ट रिपोर्ट दिखायीं ?"

रत्नी ने कहा—"डाक्टर सब जानता है। हम पिछले साल या उससे पहले साल वाली चिट्ठियों का सबूत क्यों पेश करें।... आज तो आज की ही बात करनी चाहिए...।

सुरेन्द्र मतलब समझता हुआ भौंचक्का-सा रत्नी के मुंह की ओर ताकने लगा। मुर्झाया निर्जीव चेहरा।

"पर दोस्त होने के नाते तुमसे इतना तो पूछ सकता हूं कि पैसा है तुम्हारे पास ?"

जवाब पाने से पहले ही दुनीचंद को बुलाया और इलाज तथा परहेज़ वाली चीज़ें बाज़ार से मंगाने का आदेश देकर तथा हाथ में रुपये थमा कर पीछे मुड़े बिना ही कमरे से बाहर चला गया।

अपने कमरे में सुरेन्द्र को चैन नहीं मिला। उसने आज पहली बार रत्नी का मुंह इतना कमज़ोर देखा था। उसे लगा कि खुद उस के भीतर भी कोई कमज़ोरी जागने लगी है। शादी से पहले की रत्नी याद आई पर फिर अपना सिर झटक कर सो गया।

दो महीने हो गए। न सुरेन्द्र ही इस मकान को छोड़ कर दूसरी जगह गया और न ही रत्नी ने कोई मकान लिया।

एक दिन दुनीचंद छुट्टी लेकर घर चला गया। रत्नी स्कूल से दो तीन रजिस्टर साथ ले आई। खुद ही चाय बना कर अपने कमरे में आई और सुरेन्द्र को भी आया देखकर उसे भी एक कप दे आई। वह कोई उपन्यास पढ़ रहा था। रत्नी को देखे बिना ही उसने कप उठा लिया और पीने लगा। यह भी नहीं सोचा कि कौन बना लाया। रत्नी को यह अच्छा लगा। बहुत देर उसे देखती ही रही। आखिर उसके हाथ से किताब छीन कर कहा "श्रीमान् जी, पहले चाय पीजिए।"

हड़बड़ा कर सुरेन्द्र खड़ा हो गया।

"तुमने चाय बनाई ? क्यों ? हां, दुनीचंद छुट्टी पर गया है।"

रत्नी ज़ोर से हंसती हुई किचन में चली गई और खाना पकाने लगी। थोड़ी मदद करोगे ? पहले की तरह ?"

सुरेन्द्र ने जवाब दिया, "पहले की तरह का क्या होता है ? आज की बात आज।"

"एक पड़ोसी से भी तो मदद मांग सकते हैं।" बाल झुलाती हुई वह फिर किचन में चली गई। उसकी साड़ी कंधों से सरक गई। सुरेन्द्र की छाती धड़कने लगी। वह धीरे-धीरे उठा और दबे पांव किचन में चला गया। अनायास रत्नी की गर्दन पर चुंबन जड़ दिया।

रत्नी ठिठक गई। सिर हिलाया तक नहीं। उसकी कनपटियां लाल हो गईं। सुरेन्द्र को स्वयं पर गुस्सा आया। लौटते कदमों बाहर निकल गया। बैठा पछताने लगा कि यह मैंने क्या किया। खुद पर मेरा बस क्यों नहीं रहा ?

क्षण भर बाद रत्नी आई और सिर लटकाए सुरेन्द्र को पीछे से बांहों में भर लिया। फिर खुद भी उसके बेड पर बैठ गई और पलटकर सुरेन्द्र को अपने ऊपर गिरा लिया।

सुरेन्द्र जैसे चोरी करते पकड़ा जा रहा हो। वह छूटने की कोशिश करने लगा, पर रत्नी उसे छोड़ नहीं रही थी।

धीरे से बोली,

"मैंने नीचे के दरवाज़े पर सिटकनी लगाई है।"

"यह दरवाज़ा.. खिड़किया...बंद कर दो !" मुश्किल से सुरेन्द्र बोल सका। एक नवोढ़ा दुल्हन की तरह उसे खुलने में बहुत देर लगी...।

तलाकनामे पर हस्ताक्षर हुए चार साल हो गए हैं। इन्हीं वर्षों में दुनीचंद ने अपनी सेहत बना ली।

सुरेन्द्रनाथ और रत्नी की इस क़हानी को 'लवस्टोरी' कहें कि नहीं यह फ़ैसला करना मुश्किल है। हर प्रेम कथा के तीन कोण होते हैं। इस कहानी के दो हैं, हां दो ही हैं। □

बड़ी बस्ती का छोटा कमरा

□ हृदय कौल भारती

यह बस्ती सरकारी है, इसलिए मकानों की बनावट उनका आकार एक-सा होना स्वाभाविक सी बात है। कहा जाये कि सरकारी बस्तियों की पहचान ही उनके मकानों का एक सा होना होता है तो कुछ ग़लत न होगा और इसलिए मुझे ऐसी बस्तियों में रहना बहुत अच्छा लगता है कि मेरी पहचान मेरा अस्तित्व बस्ती की यकसानियत में गुम होकर मेरे अहम का बोझ हलका हो जाता है और पहचान के नाम पर केवल कुछ अक्षर और चन्द आंकड़े रह जाते हैं—'ब्लाक तीन बी ओवर एक सौ दो (Block III B/102)। मुझ से पहले जो बस्ती के इस कमरे में रहता था उसकी पहचान भी यही थी—मेरी पहचान भी यही है और जो मेरे बाद आने वाला है उसकी पहचान भी यही होगी ब्लाक तीन बी ओवर एक सौ दो (Block B III/102) कितनी बार मैंने आंखें बन्द करके उस चेहरे को पहचानने की कोशिश की जिसका मैं उत्तराधिकारी था जो मेरे लिए यह कमरा खाली करके चला गया। लेकिन हर बार मुझे केवल अपना ही चेहरा नज़र आया—वह अपने सारे दुःख-सुख इसी 'बी / 102' में बिता कर तो नहीं गया होगा—इस सीमित छोटे से कमरे में आदमी के सारे दु ख-सुख तो नहीं समा सकते, दुखों-सुखों की सूची इतनी संक्षिप्त तो नहीं हो सकती—या फिर पहचान यकसानियत के मटमैले रंग में गुम हो जाने से दुःख-सुख अपना अर्थ खो देते हैं। इस विचार के आते ही जैसे अन्दर ही अन्दर कोई कौंधा लपका और संक्षिप्त से कमरे की दीवारों पर दुःख सुख की किरचों के जंगल उग आये।

वह शायद कमरा छोड़ने से पहले अपने दुःख-सुख की सूची इसी कमरे में जला चुका था—वह यहां से हल्का हो कर चला गया था लेकिन सूची की राख से उगा किरचों का यह जंगल वह अपने उत्तराधिकारी के लिए छोड़ गया था। किरचों से छलनी होने से बचने का केवल एक ही उपाय था कि मैं मट मैली एक से आकार वाले मकानों की बस्ती से निकल पड़ूं, चुपचाप किसी से कुछ

कहे सुने बिना—और मैंने फैसला किया कि रात पड़ते ही निकल पड़ूंगा। मैं किरचों की इस जंगल को विरासत में स्वीकार नहीं सकता।

—"तुम हमें छोड़कर नहीं जा सकते !" अनायास ही किरचें चरमरा कर बोल उठीं।

"क्यों—क्यों नहीं जा सकता ?"

"इसलिए कि हम तुम्हारी विरासत हैं" —किरचें फिर चरमरायीं।

"नहीं मेरा तुम से कोई रिश्ता नहीं मैं तो केवल बस्ती की यकसानियत देखके चला आया था" —मैंने सत्य छुपाने की कोशिश की।

"तुम झूठ कह रहे हो" —किरचें फिर चरमराईं, "तुम एक से मकानों की इस मटमैली बस्ती में अपनी पहचान खो देना चाहते थे, क्योंकि तुम्हारी पहचान तुम्हारे लिए अभिशाप बन चुकी है, इसे बनाए रखना अब तुम्हारे बस की बात नहीं तुम इस मटमैली बस्ती में इसे दफनाने आये थे।"

इतना कहने के बाद किरचों का जंगल फिर से मुर्दा हो गया और मैं सलाखें लगी खिड़की से बाहर देखने लगा, झुलसती दोपहरी में सुनसान सड़क कुछ ज्यादा ही सुनसान लग रही थी। सामने एक आवारा कुत्ता लैम्प पोस्ट की सीमित सी छाया में सिमट कर सोने की कोशिश कर रहा था। लेकिन छाया इतनी सीमित थी कि सिमटने के बाद भी उसका आधा शरीर कड़कती धूप में रहता था। तंग आकर कुत्ता वहां से उठा और एक ओर की तंग गली में गायब हो गया। उसे सम्भवत: कोई ऐसी जगह याद आ गई थी जहां वह छाया में बैठकर आराम से सो सकता था। मैं भी अन्दर ही अन्दर कोई ऐसा स्थान तलाशने लगा जहां न पहचान को बनाये रखने का जोखिम हो और न विरासत में मिली किरचों से घायल होने का डर—लेकिन, बहुत खोजने खंगालने पर भी मुझे ऐसी कोई जगह याद नहीं आई, मायूस होकर मैं खिड़की से हट गया और अन्दर आकर उसी तरह सिमट कर किरचों से बचने की कोशिश करने लगा जैसे अभी-अभी कुत्ता सिमट कर झुलसती धूप से बचने का असफल प्रयास कर रहा था, अन्तर केवल इतना था कि उसे तंग गली का कोई सायेदार कोना मिला था और मेरी दुनिया में कोई ऐसा कोना नहीं था जहां मैं केवल अपने साथ जी सकूं।

घबरा कर मैं फिर सलाखें लगी खिड़की के पास गया बाहर अब साये लम्बे होने लगे थे, धूप का जोर भी कुछ कम हो गया था, और जाने क्यों मैंने चाहा कि वह आवारा कुत्ता तंग गली से निकलकर लैम्प पोस्ट की छाया में सोने के लिए आ जाये। अब उसे छाया में सिमट कर लेटना नहीं पड़ता। परन्तु बहुत प्रतीक्षा के बाद भी वह कुत्ता जाने क्यों नहीं आया।

मैंने ऊब कर लेम्प पोस्ट से जुड़ी बिजली की तारों की छाया के साथ-साथ नजरों को फिसलने दिया तो एक जगह नजरें एक झटके के साथ रुक

गईं। छाया का धब्बा देखकर ही मैं समझ गया कि ऊपर तारों में क्या उलझ गया होगा, साहस नहीं हुआ कि नज़रें ऊपर उठाकर देख लूं। धब्बे से नज़रें हटाने की कोशिश की लेकिन कोई अनजान, कोई बेनाम-सा रिश्ता था दोनों के बीच कि मैं ऐसा कर न सका न चाहते हुए भी नज़रें ऊपर तारों की ओर उठीं तो वही कुछ पाया जिसका मुझे डर था और जो मैं देखना नहीं चाहता था ; ऊपर "हाई टेन्शन" तार पर एक अबाबील अकड़ी हुई औंधी लटक रही थी, सम्भवतः डाल समझ कर हाईटेंशन के जंक्शन पर आ बैठी थी या फिर किसी बाज़ के डर से एक जैसे आकार के मकानों वाली मट मैली बस्ती में अपनी पहचान खोजने के अभिप्राय से छुपते-छुपाते यहां आ गई थी। मैं न जाने कितनी देर औंधी लटकती अबाबील को देखता रहा कि तभी लगा कि मेरे अतिरिक्त कोई और भी ऊपर मरी पड़ी अबाबील को देख रहा है। हाईटेंशन तार से नज़रें हटाकर नीचे देखा तो आवारा कुत्ता तंग गली से निकल कर मुंह उठाये ऊपर ललचाई नज़रों से तार पर अकड़ी अबाबील को ताक रहा था। कुत्ते को ऐसे ललचाते देख जी चाहा कि खिड़की की सलाखें तोड़कर उसे बस्ती से बाहर कर दूं लेकिन तभी ख्याल आया कि सम्भवतः कि यह कुत्ता और वह अबाबील दोनों एक दूसरे की विरासत का अंग हैं।

इसके बाद साये लम्बे होते गये फैलते गये यहां तक कि सब कुछ सायों के सागर में डूब गया ; हाईटेंशन तार पर औंधी लटकती अबाबील का शव गली का आवारा कुत्ता बस्ती की यकसानियत इसका मटमैलापन और मेरा अस्तित्व-सब सायों के सागर में बेआवाज़ डूब गया था फिर यह केवल मेरा सपना था मैं ठीक से कह नहीं सकता। लेकिन, जब मैं जागा तो अन्धेरा बहुत गहरा हो चला था, रात के सन्नाटे में, मैंने दबे पांव खिड़की से बाहर झांका मैं आश्वासत होना चाहता था कि कुत्ता अब वहां नहीं है। वह था या नहीं मैं अन्धेरे में ठीक से देख न सका। मुड़कर मैंने कुछ सोचे बिना निर्णयात्मक अन्दाज़ से द्वार तक की दूरी एक ही छलांग में पार की और कमरे से बाहर निकल आया ऐसा करते समय जाने कितनी और कैसी-कैसी किरचें पैरों को लहूलुहान कर गयीं। लेकिन मैं कमरे से दालान, दालान से सड़क और सड़क से बस्ती फलांगता हुआ बहुत दूर निकल गया, पहले की तही ही पहचान के छलनी अहम का बोझ कन्धों पर लिए अपने विचार में सुरक्षित...!! लेकिन तभी मुझे लगा कि कोई अभिशाप सा मेरे पीछे-पीछे दबे पांव मेरे साथ आ रहा है। मुड़कर देखा, वही आवारा कुत्ता मेरे पैरों से रिसते खून को चाटता था वैसे ही ललचाई नज़रों से ताकता हुआ जैसे वह तार पर औंधी लटकती अकड़ी हुई अबाबील को ताक रहा था। अब उसके और मेरे बीच सलाखें लगीं खिड़की भी नहीं थी जो उसे मुझ से दूर रखती।

और मटमैली एक से मकानों वाली बस्ती भी बहुत-बहुत पीछे छूट गई थी। □

सन्तान का दुख

गुलाम रसूल संतोष

मैं उससे इतना ही परिचित था जितना अपने रसोईघर बरामदे और उस बरामदे की लकड़ी की तीन सीढ़ियों से । ऊपर वाली दो सीढ़ियां जिन पर पैर टिकाया नहीं कि चूं-चूं की आवाज़ शुरू हुई । तीसरी सीढ़ी ऊबड़-खावड़ सी धरती के साथ, लगी हुई, पांव का स्पर्श होते ही घबरा कर सीधी खड़ी हो जाती, और फिर धड़ाम से अपने स्थान पर गिर पड़ती, मानों किसी मृतक में क्षण भर के लिए प्राण पड़ गये हों और फिर प्राण निकलने के पश्चात् वह धरती पर गिर पड़ा हो ।

इस बरामदे के एक सिरे पर वो सिमटी-सिकुडी बैठी अपना मुख अपनी पिछली बाईं टांग के नीचे छुपा कर ऊंघती रहती थी । कितनी ही बार मैंने उसके शरीर का एक-एक अंग अपने पैरों तले रौंदा होगा, पर उसने कभी चूं तक नहीं की । शायद वह यह समझती हो कि मैंने जान बूझ कर उसे न रौंदा हो बल्कि अन्धेरा होने के कारण अनायास ही मेरा पैर उस पर जा पड़ा हो । या फिर अधिक प्रसवों के कारण क्षीण सी हो गई हो और ज़रा सा हिलना-झुलना भी उसे बोझ सा लगता हो ।

सांझ ढलते ही वह आंगन के द्वार से अन्दर आती और उतनी देर इसी बरामदे के नीचे गुड़-मुड़ सी बैठी रहती जब तक कि हमारे परिवार का हर एक जीव भोजन करने के पश्चात् उसको टुकड़ा न डालता । मैं कुछ देर से ही घर आता था, परन्तु उसे मेरी प्रतीक्षा रहती । भोजन करके मैं रसोई से निकलता, उसे टुकड़ा डालता, वह खाकर जिस्म तान लेती, मैं द्वार खोलता और वह बाहर चली जाती । वैसे तो यह एक आवारा कुतिया थी परन्तु इसकी आदतें आवारा कुत्तों जैसी न थीं । मुर्गियों की तो बात ही रहने दीजिए, यह चूज़ों को भी कभी कुछ नहीं कहती और न ही कभी नालियों के किनारे सूंघती

फ़िरती। सुबह शाम छः सात टुकड़े खाकर किसी दीवार के नीचे बड़े आराम से पड़ी रहती।

आज जब मैं बाहर से आकर बरामदे तक पहुंचा तो अनायास मेरा ध्यान उसकी ओर चला गया, परन्तु वह वहां न थी। मैंने बरामदे से नीचे उतर कर आंगन के किवाड़ खोल दिये। रसोई की खिड़की में बैठते समय कई टुकड़े मैंने पड़े हुए देखे। मैंने अनुमान लगाया कि सम्भवतः आज बाहर ही किसी ने उसे कुछ खाने को डाल दिया हो या फिर परिवार के किसी व्यक्ति ने मारा-पीटा हो परन्तु नहीं, यदि यह बात होती तो घर वाले कदाचित् अपने-अपने भोजन में से टुकड़े निकाल कर उसके लिए खिड़की के नीचे न रखते। मैंने सोचा, वैसे तो हमारे मुहल्ले में बहुत से कुत्ते हैं। किसी ने आवाज़ लगाई नहीं कि गलियों में से दायें-बायें से भौंकते-भागते आ पहुंचते। संध्या होने पर तो वह इतना शोर मचाते कि जी घबराने लगता। परन्तु आज एक ही आवाज़ बार-बार सुनाई दे रही थी। परन्तु यह भौंकने की आवाज़ नहीं थी, यह तो रोने की आवाज़ थी, जो लगातार कानों में सुनाई दे रही थी। पहले तो मैंने इसकी ओर कोई ध्यान न दिया, परन्तु जब रात्रि की चुप्पी धीरे-धीरे बढ़ती गई तब यह रुदन मेरे हृदय में शूल की भांति चुभता गया। पीड़ा और वेदना से भरा करुण-क्रंदन, वैसा ही करुण-क्रंदन जैसा मेरी मां ने मेरे नाना के मरने पर किया था वैसा ही रुदन जैसा मेरी बुआ ने मेरे पिताजी की मृत्यु के समय किया था। ममता की वेदना, भाई का प्रेम, पुत्र वियोग के ससय जैसा रोना-धोना और करुण-क्रंदन सुनने को मिलता है वैसे ही भाव इस आवाज़ में थे। शेष कुत्तों के भौंकने की आवाज़ किसी भी ओर से सुनाई नहीं दे रही थी। यह सोचते-सोचते रब जाने मुझे कब नींद पड़ गई। परन्तु खिड़की के नीचे रोटी के टुकड़े पड़े हुये थे। मैंने भी भोजन के पश्चात् रोटी का एक टुकड़ा वहां पर रख दिया। मैंने अपने परिवार वालों से पूछा कि यह रोने वाली कौन सी कुतिया है और इसे क्या हुआ है? एक ने कहा यह वह है जिसके सिर पर किसी ने उबलती मांड उंडेल दी थी। परन्तु वह कुतिया तो मैंने देखी थी। यह रोना उस तरह का पीड़क नहीं है। दूसरे ने कहा कि यह वह कुतिया है जिसको किसी ने लाठी से इतना पीटा कि गर्भ में ही उसके पिल्ले मर गये। परन्तु यह पीड़ा उस प्रकार की भी नहीं थी। यही बात सत्य भी होती तो वो कब की मर गई होती। मेरी चाची ने भर्राये स्वर में कहा, "इसके पिल्ले किसी ने मार डाले हैं" हां! यह उसी प्रकार की पीड़ा और वेदना हो सकती है, "संतान का दुख सब के लिए एक समान होता है।" मैंने आह भर कर समर्थन किया।

यह सुन कर मेरा हाथ थाली में ही रुक गया। सन्तान का दुख केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं, पशुओं के लिए भी एक समान होता है। ये वह सत्य है जिसका अनुभव मुझे आज हुआ था। पहले पहले सात-आठ महीने के शिशु

के मरने पर उसकी मां का रोना करवट बदलते समय मेरी नींद क्षण भर के लिए टूटती तो इस करुण-क्रंदन की ध्वनि मेरे कानों से आ टकराती। सारी रात इसी उदासी में बीत गई।

रात्रि का समय खामोशी का समय होता है। रात्रि के उस शून्य में हल्की सी आवाज़ भी भयपूर्ण प्रतीत होती है। रात्रि पीड़ा और वेदना को और भी तीव्र कर देती है। दर्द की नसें और भी तन जाती है और वेदना से सिसकने-रोने पर विवश कर देती है। दिन के कोलाहल में पीड़ा और वेदना मन्द पड़ जाती है। रात्रि का वह करुण रुदन भी दिन के उस कोलाहल में गुम सा हो गया, परन्तु मेरे कानों को दिन के इस कोलाहल में भी वह आवाज़ सुनाई दे रही थी। संध्या को जिस समय मैं घर लौटा तो सब से पहले अन्धेरे आंगन को भली-भांति देखा परन्तु कुतिया आज भी गायब थी। कहीं दूर से रोने की आवाज़ बराबर सुनाई दे रही थी और जिस समय यह आवाज़ नज़दीक आती प्रतीत हुई मुझे इसमें और भी अधिक पीड़ा वेदना अनुभव हुई। खुदा जाने इस रोने में क्या असर था कि मुझे ऐसे लगा जैसे कोई मेरे हृदय में शूल चुभो रहा हो। आज फिर कल की भांति पीया मुझे बकवास लगता था, परन्तु अब सात आठ महीने के शिशु और तीस वर्ष के युवक में मुझे कोई अन्तर अनुभव नहीं होता।

अब में चाहे किसी महफिल में बैठा हुआ होऊं या मित्रों के संग गप-शप में मग्न होऊं, अचानक मेरा ध्यान 'बबल' की ओर चला जाता है। सोचने लगता हूं कि कहीं वो रेंगतें-रेंगतें बरामदे से नीचे न गिर पड़ा हो। कहीं उसने कांगड़ी में हाथ न डाल दिया हो। चाहे मित्र लोग नाराज़ हो जायें या महफिल भंग हो जाए परन्तु मैं घर की ओर चल ही देता हूँ और घर पहुंचते ही 'बबल' को गोद में लेकर लाड-प्यार करता हूं। सन्तान का दुख सबके लिए एक समान होता है। मनुष्यों के लिए भी और पशुओं के लिए भी। इस कुतिया के रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुन कर मेरी भूख-प्यास मिट गई और मेरा जी उदास सा हो गया। उसकी तलाश में मैं घर से बाहर निकल पड़ा परन्तु वह मालूम नहीं कहां थी···किस गली में रो रही थी···अपने पिल्लों को ढूंढ रही थी, "कहां हो तुम सब? कहां चले गये हो मेरी आंखों के तारो! देखो, मैं तुम्हारी मां तुम्हें पुकार रही हूँ! तुम को भूख अवश्य लगी होगी। तभी तो मेरे थन भारी-भारी से हो गये है। इनमें से दूध की धाराएँ फूट रही हैं। मेरे पास आओ मैं तुम्हें दूध पिलाऊं। ऊपर 'बबल' ने रोना शुरू कर दिया। मेरी आंखों में आंसू भर आए। मैंने अपने भाई से कहा "सवाब कमाओ, कल प्रातः इस कुतिया को 'वेट्रनरी हस्पताल' ले जाओ उसने उत्तर दिया "परन्तु वह तो किसी को पास फड़कने ही नहीं देती"। मेरी मां कहने लगी, "शायद इसके

स्तन दूध भर आने के कारण बोझिल हो गये हैं। हो सकता है उसी पीड़ा के कारण यह चिल्ला रही है।''

मुझे स्मरण है, मेरी पत्नी ने जब बच्चा जना था तो उसकी छातियों में भी कई बार अधिक दूध चढ़ जाता था और वह भी उस पीड़ा के कारण तड़प उठती थी। डाक्टरों ने उसका दूध 'बबल' के लिए मना कर रखा था, परन्तु पीड़ा से मुक्त होने के लिए वह मेरी चोरी उसे अपना दूध पिला ही देती थी।

कल की भांति आज की रात भी उदासी में ही कटी, क्योंकि कुतिया के रोने की आवाज़ बीच-बीच में सुनाई दे ही जाती थी। मैं सारी रात कुछ भयभीत सा रहा और सोये हुए 'बबल' को लाड-प्यार करता रहा और उसकी दीर्घ आयु की प्रार्थना करता रहा। सन्तान का दुख। ऊपर बरामदे में सोई हुई मेरी मां ने जब मेरे खांसने की आवाज सुनी तो उठकर बैठ गई "क्या बात है तू ठीक तो है न ? 'बबल' ठीक है न ?'' सब को सन्तान की पीड़ा है। मुझे कुछ मालूम नहीं कि किस समय मेरी आंख लगी सवेरे देर तक मैं सोया रहा। कुतिया के रोने की आवाज मानों दिन के कोलाहल में दब सी गई थी।

रात को रखे हुए रोटी के टुकड़े लेकर मैं उसको ढूंढ़ने के लिए निकल पड़ा। मैंने देखा एक गली में बैठी हुई वह चिल्ला रही थी और आंखें घुमा-घुमा कर इधर-उधर देख रही थी। उसके पास बहुत से कुत्ते मानों संवेदना प्रकट करने के लिए इकट्ठे हुए हो। जब यह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती तो कोई कुत्ता इसके पास जाकर भौंकता जैसे उसे तसल्ली दे रहा हो। कभी कोई कुत्ता ज़ोर से भौंकता और वह डर कर दीवार के साथ चिपक जाती। मिट्टी और कीचड़ से उसकी दुर्दशा हो गई थी। कुत्तों के काटने और बच्चों के पत्थर मारने के कारण इसके शरीर पर घाव हो गये थे। परन्तु इन घावों की पीड़ा सन्तान की पीड़ा की अपेक्षा कुछ भी नहीं थी।

मैंने उसके सामने रोटी के टुकड़े रखे तो उसने आंसू भरी आंखों से देखा, जैसे कह रही हो "आप जैसे मनुष्यों से मुझे आशा नहीं थी। आप लोग भी सन्तान वाले हो। मेरे पिल्लों ने आप लोगों का क्या बिगाड़ा था ? मैंने तो कभी आप के चूज़ों को दांत तक नहीं लगाया। तुमने कितनी ही बार मुझे अपने पैरों तले रौंदा पर मैंने तो कभी कुछ नहीं कहा।'' उसने उन रोटी के टुकड़ों को छुआ तक नहीं बस केवल मेरी ओर एक टक देखती रही। मैं जाकर एक कुलचा (बेकरी की रोटी) लाया और तोड़कर उसके सामने रखा परन्तु उसने वह भी नहीं खाया बल्कि उल्टा मुझे काटने को दौड़ी "एक तो मेरे पिल्ले मार डाले और अब मुझे कुलचा खिला रहे हो। आप लोगों का क्या भरोसा, क्या पता इसमें भी विष मिलाया हो।'' मैंने बहुत यत्न किये कि उसे पकड़कर वैट्नरी ले जाऊं, परन्तु उसने किसी भी प्रकार मुझे हाथ न लगाने दिया। मैंने सफाई

कर्मचारी से अनुरोध किया, कुछ पैसे भी उसके हाथ में दिये ताकि वह इसे वैट्रनरी ले जाए।

शाम को जब मैं घर लौटा तो इसी कुतिया की चर्चा चल रही थी। कल तक जो "सन्तान का दुख" कह कहकर आहें भर रहे थे, आज वही कह रहे थे "बेड़ा गर्क जाए इस मनहूस का, इतनी जोर से भौंकी कि मैं डर ही गई। मक्खन के बेटे की जांघ काट खाई। उसको अब अस्पताल ले गये। किसी का पाजामा फाड़कर चिथड़े-चिथड़े कर दिया, किसी के मुर्गे मार गई।" मुझे यह सब बातें सुन कर भीतर ही भीतर बहुत क्रोध आया। कुतिया के रोने चिल्लाने की आवाज अब भी उसी प्रकार कानों में सुनाई दे रही थी, "हाय मेरे बच्चो, किस ने तुमको विष देकर मार डाला, दूध से मेरे थन भारी हो गये हैं। बहुत देर तक मेरे परिवार वाले इसको बुरा भला कहते रहे। मुझ से रहा न गया। "सन्तान का दुख सब को एक समान होता है चाहे मनुष्य हो या पशु।" वो सब चुप हो गये परन्तु उनकी नजरें जैसे मुझे कह रही थी "एक कुतिया के लिए अब क्या हम अपने बच्चों को मरवा दें। वह रास्ता रोके बैठी हुई है।" मैं कुतिया के बारे में सोच ही रहा था कि अनायास बरामदे के नीचे से उसके चिल्लाने की आवाज आई कि हम सब घबरा गये। 'बबल' गहरी नींद में सोया हुआ था वह भी चिल्ला कर उठ बैठा।

"तेरा बेड़ा गर्क जाए कलमुंही" मेरी मां के मुंह से निकल पड़ा।

"तुम्हारे अपने मरें" मेरी चाची ने उसे भगाते हुये कहा मेरी पत्नी ने मेरी ओर घूर कर देखा "आप का हृदय बहुत ही कोमल है। कुत्ते भी आप ने सर चढ़ा रखे हैं। इस कमजात को कोढ़ पड़े हमारा अन्दर बाहर निकलना भी कठिन हो गया है। इसके जनने वाले मरें।"

मेरे दिल को उसका इस प्रकार चिल्लाना कुछ अच्छा नहीं लगा, 'बबल' हड़बड़ा कर जाग गया। यह कुतिया मर ही जाती तो अच्छा था। मैंने उठ कर उसे बाहर निकाला और रोटी के कुछ टुकड़े उसके सामने डाले उसने एक नज़र रोटी के टुकड़ों को देखा और फिर मेरी ओर घूर कर देखने लगी, जैसे कह रही हो, "जा, जा देख ली तेरी सहानुभूति भी। बड़ा आया था सुबह कुलचा लेकर। मैं जानती हू मेरे बच्चे मारने के पश्चात् अब आप लोग मुझे मारने के पीछे लगे हुए हो। मुझे यह भी मालूम है रोटी के इन टुकड़ों में विष मिला हुआ है। सन्तान का दुख सब को एक समान होता है। तुम्हारा बच्चा थोड़ा सा डर गया तो आप सभी लोग मुझे बुरा भला कहने लगे। आप लोगों ने मेरे पिल्ले मार डाले, मैं रोऊं भी न तो और क्या करूं? बिलखूं भी नहीं तो और क्या करूं? उनके बिना मेरे थनों से दूध छलक छलक कर बाहर गिर रहा है।' वह बिना रोटी खाये रोती चिल्लाती कहीं दूर भाग गई।

मुझे उस परकुछ दया भी आई कुछ क्रोध भी। सभी ने एक दिन मरना है। मेरे पिता जी भी मरे थे वह मेरी मां के पति थे, हम भी कुछ देर रोए चिल्लाये और फिर बात आई गई हो गई। मरे हुए कभी लौट कर नहीं आते मेरी नानी के बेटे युवा अवस्था में मरे। मरना जीना तो इस संसार में लगा रहता है। यह सोचता-सोचता मैं अपने कमरे में लौट आया और लेटते ही ऐसी गहरी नींद में सो गया कि सवेरे तक मुझे कोई सुध ही न रही।

सवेरे अभी मैं कच्ची-पक्की नींद में ही था कि बाहर किसी के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी। मैंने उठ कर खिड़की से बाहर झांक कर गली में आने जाने वालों से पूछा कि बात क्या थी? उस कुतिया ने किसी की टांग काट खाई थी। मैं अभी पूछ-ताछ ही कर रहा था कि वह गली के एक सिरे से भागती हुई आई और अन्दर घुस गई। उसके पीछे-पीछे कोई व्यक्ति लाठी लिये भाग रहा था। ख़ुदा ही जानता है कि उसने कितना मारा। आगे पीछे के लोग दीवारों पर बंद औरखिड़कियों से झांक कर यह दृश्य देख रहे थे और साथ ही साथ कह रहे थे, "यह कमेटी वाले भी तो उस बला का कुछ भी नहीं करते। इन कुत्तों ने तो प्रलय ही मचा रखी है किसी को काट खाते हैं और किसी के वस्त्र फाड़ देते है। बच्चों का बाहर निकलना भी कठिन हो गया है। चूजों का तो बाहर निकलना सम्भव ही नहीं।" मैं खिड़की पर से भीतर आ गया परन्तु बाहर बहुत देर तक यह बातें चलती रहीं।

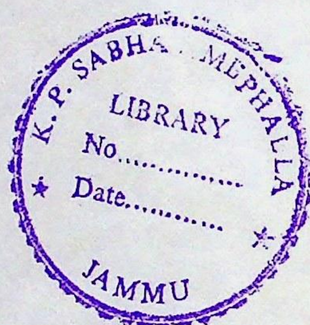
दिन में मैं अपना सारा काम काज छोड़ कर इस प्रयास में लगा रहा कि किसी प्रकार में इसको वेट्नरी ले जाऊंगा परन्तु कोई प्रबन्ध न हो सका। सफाई कर्मचारी को लालच भी दिया। परन्तु उसने भी 'न' करदी।" बाजी न, हमें कोई अपने जीवन से वैर है? यह हर किसी को काटने को दौड़ती है!"

जब मैं घर लौटा तो सारे बच्चे घरों के भीतर जा घुसे थे। आज किसी ने भी मुर्गों को बाहर नहीं निकाला था। भोजन के समय मैंने आदत के मुताबक भात की बलि (कश्मीर में लोग भोजन करने से पहले भात का पेड़ा सा बना कर कुत्तों या पक्षियों के लिए बाहर निकाल कर रखते हैं) बनाई और खिड़की के नीचे रख दी। मेरी पत्नी ने त्योरी चढ़ा कर देखा, " यह उसी कमजात के लिये है क्या? खबरदार यदि उसको कुछ भी खाने को दिया तो आज मेरी टांग भी खा गई थी। गोद से 'बबल' गिरते-गिरते बचा। यह सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। जी में आया कि उठ कर उस कुतिया के टुकड़े-टुकड़े कर दूं, परन्तु न जाने वह किस गली में चिल्ला रही थी। मैंने थाली में परोसा हुआ आधा ही भात खाया और शेष की बलियां बना कर उनमें चूहे मारने वाली दवाई मिलाई। काल जैसे उस कुतिया के सिर पर नाच रहा था। वह स्वयं ही हमारे द्वार के सामने आ पहुंची मैं बलियां हाथ में लेकर बाहर निकल आया। वह द्वार पर बैठी मेरी ओर अजीब नज़रों से देख रही थी। मुझे दया

आ गई। परन्तु साथ ही मुझे याद आ गया कि आज यह मेरी पत्नी को भी काटने को दौड़ी थी और 'बबल' गिरते-गिरते बचा था। कल को यदि यह 'बबल' को काटने दौड़ी तो? मैंने बलियां उसके आगे डालीं। उसने उनको सूंघा फिर मेरी ओर घूर कर इस प्रकार देखने लगी जैसे मुझ से कह रही हो, "मैं जानती हूं कि तुम मुझे क्या खाने को दे रहे हो। अच्छी बात है, यदि तुम्हें और तुम्हारे परिवार वालों को इस बात से संतोष मिल सकता है तो मुझे यह स्वीकार है।" मैं कांप रहा था। उसने जिस समय बलियां खानी शुरू कीं तो मेरे भीतर एक खलबली सी मच गई। मेरे दिमाग को एक धक्का सा लगा। भय और घबराहट से मेरा सारा शरीर कांप रहा था और मेरे मुख से 'दुर-दुर की आवाज भी नहीं निकल पा रही थी। उसने कुछ बलियां खा ली थीं। मैंने उसे भगाने के लिए ज़ोर से 'दुर-दुर' कहा परन्तु वह अपने स्थान से रत्ती भर भी न हिली। मैंने उसे एक ठोकर मारी परन्तु वह फिर भी वहीं डटी रही आंगन में पड़ी एक लाठी मेरे हाथ लगी और मैंने आगे पीछे देखे बिना ही उसे पीटना शुरू कर दिया। वह मार खाती जा रही थी परन्तु अपने स्थान से न हिली। केवल मेरी ओर एक टक देखे जा रही थी। मैंने शेष बलियां पैरों से रौंद डाली परन्तु फिर भी मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ। एक जन्म-जन्मांतर से भूखे की भांति मैंने इन बलियों को शीघ्र एकत्रित किया यहां तक कि मैंने धरती भी खरोंच डाली। इसके पश्चात् मैं भीतर चला आया। मैंने द्वार बन्द किये। मेरा श्वास फूल गया था। मैं गुम सुम ऊपर अपने कमरे में आ गया। मेरी पत्नी 'बबल' को अपने वक्ष से लगाये भयभीत सहमी हुई खड़ी थी। उसकी आंखों में आंसू तैर रहे थे। उसने 'बबल' को आपने वक्ष से इस प्रकार सटा रखा था मानों कोई उसको उससे छीन रहा हो।

मैं उससे नज़र न मिला सका उसकी आंखों में मातृत्व और ममता का समुद्र ठाठें मार रहा था। मैंने अपना सिर झुका लिया। □

□ अनु० नरेन्द्र शर्मा





Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU & Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, JALANDHAR (Pb.)